इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
समाज कार्य विद्यापीठ

BSW-124
मानव विकास, व्यवहार और परामर्श

खंड

2

मानव वृद्धि और विकास

इकाई 1

व्यक्तित्व का विकास 101

इकाई 2

व्यक्तित्व निर्धारण : आनुवंशिकता और पर्यावरण की भूमिका 118

इकाई 3

मानव विकास की विभिन्न अवस्थाएँ 134

इकाई 4

व्यक्तित्व के सिद्धांत 165

इकाई 5

मनोलैंगिक विकास : फ्रायड की अवधारणा 181

खंड 2 का परिचय

खण्ड 2 का शीर्षक मानव वृद्धि और विकास है, इसमें व्यक्तित्व विकास की अवधारणाओं और सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। प्रायः समाज कार्यकर्ता ऐसे लोगों के साथ कार्य करते हैं जिनका व्यक्तित्व विकारग्रस्त होता है और उनका व्यक्तित्व किसी न किसी समस्या से पीड़ित होता है। जबकि यह समाज कार्यकर्ता के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक होता है कि वह विद्यालयों, स्वास्थ्य देखभाल स्थापनाओं पारिवारिक परामर्श केन्द्रों में सुधारक के रूप में कार्य करता है वहीं पर यह बहुत ही लाभप्रद होता है जब वह सामुदायिक स्थापना के लिए कार्य करता है।

पहली इकाई का विषय व्यक्तित्व विकास है, इसमें आपको व्यक्तित्व विकास की अवधाराओं और सिद्धांतों का परिचय दिया है। **दूसरी** इकाई ''व्यक्तित्व निर्धारणः आनुवंशिकता और पर्यावरण की भूमिका" से संबंधित है। इसमें व्यक्तित्व विकास में सहयोगी घटकों और एजेंसियों की चर्चा की है। **तीसरी** इकाई ''मानव विकास की विभिन्न अवस्थाएं" में मृत्यु की संकल्पना से लेकर व्यक्ति की भौतिकीय मनोवैज्ञानिकों परिवर्तनों की चर्चा की है। **चौथी** इकाई ''व्यक्तित्व के सिद्धांत" पर आधारित है। इसमें व्यक्तित्व के सिद्धांतों को स्पष्ट किया गया है जिसमें प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों अर्थात् एरीक्सन, मास्लो कार्ल रोगर्स, स्कीनर और अन्य विद्वानों के सिद्धांतों का अध्ययन किया है। **पांचवी** और अंतिम इकाई "मनोलैंगिक विकास : फ्रायड की अवधारणा" में व्यक्तित्व विकास की आपसी समझ के साथ फ्रायड को सहयोग का विश्लेषण किया है। उनके विषय के प्रति दिए गए सहयोग को ध्यान में रखते हुए सिद्धांतों की विस्तार से चर्चा की गई है। ये इकाइयां आपको मानव व्यक्तित्व से संबंधित गहन ज्ञान अध्ययन उपलब्ध कराएगी जोकि समाज कार्य व्यवसाय के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 व्यक्तित्व का विकास

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यक्तित्व की परिभाषा

1.3 व्यक्तित्व विकास के निर्धारण तत्व

1.4 विकास के प्रतिमान

1.5 व्यक्तित्व की बाहरी छवि और व्यक्ति के व्यवहार के रूप में

1.6 समाज कार्य व्यवहार के लिए व्यक्तित्व के विकास के अध्ययन की आवश्यकता

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको व्यक्तित्व के विकास के संदर्भ में जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- व्यक्तित्व शब्द के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे;
- व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को इंगित कर सकेंगे;
- व्यक्तित्व के विकास के प्रतिमान का वर्णन कर सकेंगे; और
- समाज कार्य व्यवहार के लिए व्यक्तित्व के विकास के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई व्यक्तित्व की अवधारणा तथा समाज कार्य व्यवहार के लिए व्यक्तित्व के अध्ययन के महत्व के बारे में जानकारी प्रदान करती है। वह व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों एवं व्यक्तित्व के विकास के संरचनात्मक स्वरूप पर भी प्रकाश डालती है। इस कार्य के अन्तर्गत व्यक्तित्व के ब्राह्य स्वरूप का वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की गई है।

1.2 व्यक्तित्व की परिभाषाा

व्यक्तित्व अत्यधिक उपयोग किए जाने वाला शब्द है तथा इसके साथ अनेक अर्थ जुड़े हैं। आलपोर्ट 1937 के अनुसार इस शब्द के कम से कम पचास भिन्न–भिन्न अर्थ मान्य है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि "व्यक्तित्व" शब्द मूलरूप से लैटिन भाषाा के शब्द "पर्सोना" से लिया गया है। आलपोर्ट यह भी इंगित करते हैं कि सिसेरी के लेखों में "व्यक्तित्व"

कम से कम चार महत्वपूर्ण अर्थों में प्रयोग किया गया है। प्रथम यह कि व्यक्तित्व, व्यक्तिगत गुणों के एकीकरण के रूप में मान्य है। इस भाव में अभिनेता का व्यक्तित्व सन्दर्भित होता है। दूसरे, व्यक्तित्व उस रूप में माना जाता है कि व्यक्ति को अन्य लोग देखते व समझते हैं। इस सन्दर्भ में व्यक्तित्व को मुखौटे से जोड़ते हैं। तीसरे, व्यक्तित्व, व्यक्ति द्वारा जीवन में निर्वाह की जा रही भूमिका का प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्धारित किया जाता है अर्थात् एक व्यावसायिक, सामाजिक या राजनीतिक भूमिका जैसे नाटक में चरित्र। अन्तिम, व्यक्तिगत विशिष्टताओं और मान्यता के गुणों को सन्दर्भित करता है। यह एक सितारे की अपने व्यक्तित्व को संबंद्ध करता है। व्यक्तित्व की अनेक परिभाषाओं को कुल छः समूहों में वर्गीकृत किया है। जिनमें तीन महत्वपूर्ण एवं सार्वमान्य परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं:

सामाजिक मूल्य के रूप में व्यक्तित्व

आलपोर्ट 1924 ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए कहा है कि सामाजिक उद्दीपक तथा व्यक्ति द्वारा उसके अपने पर्यावरण के सामाजिक स्वरूपों के अनुकूलन के गुणों के प्रति व्यक्ति की चारित्रिक प्रतिक्रिया ही व्यक्तित्व है। गुथरी के अनुसार "व्यक्तित्व" वे आदतें तथा सामाजिक महत्व की आदतों का तत्त्र है जो स्थिर रहता है और परिवर्तन का प्रतिरोध करता है।

स्ट्रेन्जर 1961 ने व्यक्तित्व को सामाजिक मूल्यों से संबंधित दो अर्थों में इंगित किया है–

i) उद्दीपन के मूल्य रूप में व्यक्तित्व

इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व, व्यक्ति या व्यक्तित्व का अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों पर प्रभाव है या समाज में एक व्यक्ति दूसरे को किस रूप में प्रभावित करता है। यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तेजी से एवं सरलतापूर्वक प्रभावित करता है तो उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली माना जाता है। ऐसा दैनिक जीवन में भलीभांति देखा जाता है कि वह व्यक्ति जिसमें उच्चस्तरीय उद्दीपन मूल्य होता है या जो हमें सरलता से आकर्षित अथवा प्रभावित करता है उसके बारे में हम कहते हैं कि वह अच्छे व्यक्तित्व वाला है। मगर व्यक्तित्व की यह विचारधारा वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि भिन्न–भिन्न व्यक्तियों का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न होता है।

ii) प्रतिदर्श के रूप में व्यक्तित्व

उद्दीपन के रूप में व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्रस्तुत वर्णन की सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए, व्यक्तित्व को प्रतिदर्श के सन्दर्भ में परिभाषित किया गया है। "प्रतिदर्श के रूप में व्यक्तित्व" के सन्दर्भ में गुथरी और आलपोर्ट ने दो परिभाषाएं प्रस्तुत की है। इस प्रकार व्यक्तित्व को परिभाषित करने का लाभ यह है कि वाह्य प्रतिमानों के आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन करना सम्भव हो सकता है। परन्तु इस प्रकार की परिभाषा भी त्रुटिपूर्ण है क्योंकि व्यक्तित्व केवल प्रतिदर्शों के समूह का ही प्रतिनिधित्व नहीं करती वरन् इसके अन्तर्गत उद्दीपन मूल्य भी निहित होता है।

मध्यवर्ती–चर के रूप में व्यक्तित्व

आलपोर्ट 1937 ने व्यक्तित्व को एक मध्यवर्ती घर के रूप में परिभाषित किया है। इनके अनुसार "व्यक्तित्व, व्यक्ति के उन मनोशारीरिक तन्त्रों का उसमें निहित गतिशील संगठन है जो पर्यावरण के साथ उसके अद्वितीय समायोजन के निर्धारक तत्व होते हैं।"

मन 1953 के अनुसार भव्यक्तित्व व्यक्ति की संरचना के अधिकांश चारित्रिक गुणों, जैसे व्यवहार के स्वरूप, रुचि, मनोवृत्ति, क्षमता, योग्यता तथा अभिक्षमताओं का समाकलन है।"

व्यक्तित्व के विशेष गुण

क्रच एवं क्रेचफील्ड 1958 ने विशेषागुण को परिभाषित करते हुए बताया है कि यह व्यक्ति के विशिष्ट गुणों का विशेषक है जिसके द्वारा व्यक्ति समस्त परिस्थितियों में सकारात्मक व्यवहार करता है। व्यक्तित्व को तुलनात्मक क्रियाकलापों तथा अवलोकन उसकी अतिशीर्घ या सचेत या शुद्ध या इन सभी के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया के आधार पर किया जा सकता है। ये ऐसी सम्पत्तियां है जो सम्पूर्ण के आधार पर विश्लेषण के मार्ग में अवरोध के रूप में, विद्यमान होती है यही पक्ष या सम्पत्तियां जिन पर हम यहां विचार कर रहे हैं। "विशेषगुण" व्यवहार सम्बन्धी भी होते हैं तथा दैहिक भी होती है।

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के विशेषागुणों को निम्नलिखित आठ स्वरूपों में परिभाषित करने का प्रयास किया है–

i) विशेष गुण की उपस्थिति नाममात्र से अधिक होती है

ii) विशेष गुण आदतों की तुलना में अधिक सामान्य होता है।

iii) विशेष गुण गतिशील होते हैं अथवा कम से कम निर्धारक के रूप में अवश्य होते हैं।

iv) विशेष गुणों की उपस्थिति सांख्यिकी एवं अनुभव के आधार पर स्थापित की जा सकती

v) व्यक्तित्व के अनेक विशेषगुण एक दूसरे पर आश्रित नहीं होते।

vi) मनोवैज्ञानिक आधार पर नैतिक गुण व्यक्तित्व के विशेष गुण नहीं होते।

vii) कार्य–गुण अथवा आदत जो विशेष गुण के अनुरूप या पक्ष में नहीं होते उनसे विशेष गुण की विद्यमानता का साक्ष्य नहीं मिलता।

viii) विशेष गुण अद्वितीय तथा सारभौमिक होते हैं।

मानव विशेषागुण के सम्बन्ध में वृहद् स्तरीय विश्लेषण के आधार पर आलपोर्ट ने एक विशेषगुण सिद्धान्त प्रस्तावित किया है। जिसके आधार पर विशेषगुण के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निम्नलिखित हैः

1) व्यक्तित्व–विशेषगुण उपयुक्त व्यवहार अथवा अवरोध व्यवहार के चयन में सहायता प्रदान करता है।

2) विशेषागुण का प्रत्यक्ष अवलोकन सम्भव नहीं होता परन्तु उनके बारे में किसी परिणाम पर पहुंचा जा सकता है।

3) आदतें विशेषागुण को निर्धारित नहीं करती परन्तु एक नई आदत विकसित करने में विशेषगुण सहायक हो सकता है।

4) विशेषगुण व्यवहार की उत्पत्ति एवं निर्देशन करते हैं।

5) आलपोर्ट के अनुसार कुछ महत्वपूर्ण विशेषगुणः नियमितता, आक्रोश, प्रसन्नता, प्रतिस्पर्धा, अनोखापन, सामूहिकता, प्रभावितता आदि है।

6) सामान्य विशेषगुणों की सहायता से सामान्य व्यक्तियों के समायोजन के स्तर की तुलना की जा सकती है।

7) सामान्य विशेष गुणों के समूहों को आलपोर्ट ने संरक्षण की संक्षा दी है।

8) आलपोर्ट ने समस्त विशेषगुणों को तीन प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया है–

i) **प्रमुख विशेषगुण**– इस प्रकार के विशेषगुण अधिक प्रभावशाली होते हैं तथा इनका मुख्य कार्य संवेगों को नियन्त्रित करना होता है। इनकी संख्या बहुत कम होती है।

ii) **केन्द्रीय विशेषगुण**– ये विशेषगुण व्यक्ति के केन्द्र बिन्दु को सुनिश्चित करने में सहयोग करते हैं। प्रायः ऐसे विशेषकों को व्यक्ति को प्रखण्डों के निर्माणकर्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है।

iii) **द्वितीय विशेषागुण**–ये विशेषगुण कुछ व्यक्तिगत विशेषगुण होते हैं और कुछ सामान्य विशेषगुण होते हैं। व्यक्तिगत विशेषगुण वास्तविक लक्षणों के रूप में माने जाते हैं। सामान्य विशेषगुण अनेक व्यक्तियों में पाए जाते हैं। इनका उपयोग अनेक व्यक्तिगत–विशेषगुणों के प्रमाप के आधार के रूप में किया जाता है।

आर.बी. कैटेल ने व्यक्तिगत विशेषगुणों के क्षेत्र में अनेक अध्ययन किए हैं। इन्होंने सुनिश्चित किया कि व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए कुल 171 विशेषगुणों का अध्ययन करना अनिवार्य है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) आलपोर्ट द्वारा प्रदत्त व्यक्तित्व की परिभाषा में मुख्य शब्द क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) विशेषाक से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 व्यक्तित्व विकास के निर्धारक तत्व

प्रत्येक व्यक्ति में हम अद्वितीयता पाते हैं। कुछ लोग अपराधी होते हैं तो कुछ विधि एवं नियम का अनुपालन करने वाले नागरिक, कुछ नशाखोर होते हैं और कुछ अन्य सौम्य, कुछ

कुसमायोजित और कुछ अन्य भली–भांति समायोजित होते हैं। व्यक्तित्व के विकास एवं प्राकार्यता के अन्तर्गत निश्चित सिद्धान्त हैं जो व्यवहार के स्वरूपों में भिन्नता को समझने में हमें योग्य बनाते हैं। इनमें आनुवंशिकता एवं पर्यावरण की प्रभाविकता निहित होती है।

क) जैविक कारक

इन कारकों के अन्तर्गत प्रजनन सम्बन्धी कारक तथा हारमोन सम्बन्धी कारक सम्मिलित होते हैं। हमें इन कारणों की कुछ विस्तार से समीक्षा करनी है।

प्रजनन सम्बन्धी कारक

प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात रूप से अपने माता–पिता से, जीनी–विशिष्टताओं को प्राप्त करता है जो शारीरिक क्षमताएं जैसे मांसपेशियां, ग्रंथियां, संवेद इंद्रियां, तन्त्रिका आदि प्राप्त करता है। ये समस्त अंग किसी व्यक्ति के प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में विकसित होने के लिए अनिवार्य होते हैं। आनुवंशिकता केवल विकास की क्षमता ही नहीं प्रदान करती वरन् ये व्यक्तिगत भिन्नता का भी साधन या स्रोत है जैसाकि ये किसी अन्य चीज से अधिक अनके निश्चित विशेषगुणों के निर्धारण को प्रभावित करता है। शारीरिक संरचना एवं विभिन्न संवैधानिक कारक जैसे संवेदनशीलता, शक्ति, रोग निरोधक तथा बौद्धिक क्षमता आदि अत्यन्त स्पषट रूप से आनुवंशिकता से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार जीनी–कारक शारीरिक अंगों की सम्पूर्ण प्रकार्यात्मकता को प्रभावित कर सकती है और व्यक्ति की शारीरिक रोगों से प्रतिरोध की क्षमता को क्षीण कर सकती है। व्यक्ति की आनुवंशिकता का सबसे अधिक अद्वितीय पक्ष मस्तिषक अत्यन्त अचरजपूर्ण संचार के आधुनिक माध्यम उत्पन्न करता है जिसमें मानव अंगों के सम्पूर्ण प्राकार्यात्मकता को समेकित करने की क्षमता होती है जिससे मस्तिष्क नए अनुभवों को संकलित तथा सुरक्षित तथा तर्क, कल्पना एवं समस्या समाधान करता है। ये समस्त जैविक कारक है, जो व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारकों का वर्णन निम्नलिखित है :

1) अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

इन ग्रन्थियों से बिना किसी नलिका के प्रत्यक्ष रूप से स्राव होता है। इन ग्रन्थियों से जो स्राव होता है उसे हारमेन कहते हैं जो व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

i) **अग्न्याशय ग्रन्थियां** : इस ग्रंथि का संबंध डियोडेनम नलिका से होता है। इससे पाचक रस का स्राव होता है। इन कोशिकाओं से शरीर में इन्सुलिन का स्राव होता है जो रक्त शर्करा को निष्क्रिय करता है।

ii) **अवटु ग्रन्थियां** : इस ग्रंथि से होने वाले स्राव को थाइरोक्सिन कहते हैं जो शारीरिक वृद्धि की गति एवं दर को प्रभावित करता है।

iii) **पराअवटु ग्रन्थियां** : इस ग्रंथि का मुख्य कार्य कैलसियम की मात्रा को नियंत्रित करना है। जिसके कारण शरीर की अस्थियों एवं दांतों का विकास उपयुक्त रूप से होता है ऐसा तभी होता है जब इस ग्रन्थि का स्राव सामान्य और उपयुक्त हो।

iv) **अधिवृक्क ग्रन्थियां** : इस ग्रंथि से होने वाले स्राव को एडरेनलिन कहते हैं जो व्यक्तित्व को सुडौल बनाता है। इसका स्राव रक्त की आपूर्ति को उद्दीपित करता है तथा यकृत को प्रभावित करता है। इसके फलस्वरूप शारीरिक थकान कम होती है तथा शरीर का उच्छिष्ट शरीर से बाहर निकलता है।

v) **पीयूष ग्रन्थियां** : इस ग्रंथि के अग्र भाग से हारमोन स्रावित होता है, जो अन्य ग्रन्थियों के स्राव को नियन्त्रित करता है तथा इसके पिछले भाग का स्राव यूडिन मांसपोशि को उद्दीपित करता है।

vi) **जनन ग्रन्थियां** : इन ग्रंथियों के स्राव को जननग्रन्थि हारमोन स्राव की संज्ञा दी जाती है जो प्रोगेस्टोन ऐन्डोजेन तथा ऐस्ट्रोजन नामों से जाना जाता है। इन स्रावों से पुरुष मे पुरुषत्व विशेषगुण एवं स्त्रियों में स्त्रियित्व संबंधी गुण विकसित होता है।

2) शारीरिक गठन एवं स्वास्थ्य

व्यक्ति को उत्तर शारीरिक संरचना एवं गठन से उसकी सुयोग्यता का विकास होता है। यह भी है कि शारीरिक संरचना दोषपूर्ण होगी तो वह अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से पीड़ित होगा।

3) देह–रसायन

मस्तिष्क एवं शरीर के विभिन्न केन्द्रों में अनेक रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। यदि रासायनिक परिवर्तन सन्तुलित एवं उपयुक्त नहीं होते तो व्यक्ति अनेक समस्याओं से ग्रस्त होता है। जैसे मांसपेशियों में ग्लाइकोजेन की कमी से व्यक्ति बहुत शीघ्र थक जाता है तथा वह आलसी, उदास, कुण्ठित तथा चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाएगा।

4) परिपक्वता एवं व्यक्तित्व

परिपक्वता के आधार पर देखा जा सकता है कि कोई व्यक्ति क्या और कैसे सीखेगा। व्यक्तित्व के अनेक विशेषकों का विकास सीखने पर आधारित होता है। यदि परिपक्वता समुचित नहीं होगी तो व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं सीखना कुप्रभावित होगा।

5) जेनिटिक एवं दैहिक कारक

प्रायः बच्चों के चारित्रिक गुण उसके माता–पिता की तरह पाए जाते हैं। ऐसा बच्चे की आनुवंशिकता तथा अभिभावकों द्वारा उत्पन्न किए गए पर्यावरण जिसमें वह विकसित हो रहा है के कारण होता है। जुड़वा बच्चों पर आधारित अनेक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि व्यक्तित्व का विकास आनुवंशिकता से प्रभावित होता है। यह भी अवलोकन किया गया कि गर्भ के दौरान माता के क्रियाकलाप, उसका आहार, फीटस, आवश्यकताएँ, सांवेगिक स्तर आदि नवजात शिश के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

ख) पर्यावरणीय कारक

किसी व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विकास उसके पर्यावरण में विद्यमान प्रभावशाली कारकों के आधार पर स्थाई स्वरूप ग्रहण करता है। यहाँ तक कि समान आनुवंशिकता के लोगों में भी विभिन्न चारित्रिक गुण पाए जाते हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण व्यक्ति के विकास को, जो भाषा वह बोलता है उसके सीखने, जिन रीतियों का वह अनुपालन करता है, जिन मूल्यों में वह विश्वास करता है, जिन क्षमताओं को वह जीवन की समस्याओं के निराकरण के लिए विकसित करता है, के माध्यम से नाटकीय ढंग से प्रभावित करता है। हम ऐसा पाते हैं कि लोगों का समूह, समूह के छोटे सदस्यों को क्रमशः (शिक्षण द्वारा विशिषट संस्कृति संचारित करता है। इस प्रकार का व्यवहार समूहों के समस्त सदस्यों को किसी सीमा तक समरूपता प्रदान करता है अथवा लिन्टन (1945) ने इंगित किया है कि "मूल व्यक्तित्व के प्रकार" स्थापित करता है।

मीड (1949) के अनुसार जिन व्यक्तियों का लालन–पालन ऐसे समाज होता है जो हिंसा की अनुमति नहीं देती वे अपने विरोधों को अहिंसा के रास्ते से ही निस्तारित करते हैं। न्यूग्युनिया में समान सामाजिक मूल एवं समान सामान्य, भौगोलिक परिक्षेत्र में निवास

करने वाली दो जन जातियों में परस्पर विरोधी चारित्रिक गुण पाया गया अरापेश जनजाति सहृदय, शांतिपूर्ण, सहयोगी पाई गई जबकि मुण्डूगूमर जनजाति, लड़ाकू, संशकित, प्रतिस्पर्धा–पूर्ण तथा बदला लेने वाली पाई गई। ये भिन्नताएँ सामाजिक परिस्थितियों के कारण पाई गई।

प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय प्रकार के उप समूहों से संबंधित होता है तथा अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के अद्वितीय तरीक का अनुभव करता है। व्यक्ति के आधार पर सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण में सहभागिता में भिन्नता हो सकती। यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण भिन्नता का कारण होता है व्यक्तित्व के तत्वों में भी विभिन्नता पाई जाती है। पर्यावरणीय कारक दो वर्गों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं

i) भौगोलिक कारक

ii) सामाजिक कारक

सामाजिक कारकों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है–

1) माता/पिता सम्बन्धी कारक

i) माता का महत्व

इस क्षेत्र में किए गए अनेक शोधकार्यों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण पर्यावरण ीय कारकों के अन्तर्गत व्यक्ति सर्वाधिक प्रारम्भिक अवस्था में सबसे अधिक माता के साथ सम्बन्धों से प्रभावित होता है। हार्लो (1966) ने बन्दर के बच्चे पर एक शोध अध्ययन किया जिससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक विकास के दौरान एकाकीपन के कारण बन्दर का बच्चा अन्य साथियों के साथ स्वस्थ्य सामाजिक सम्बन्ध (1963) बनाने में असफल रहा। लगभग यही परिणाम स्पित्ज (1949) तथा योरो के अध्ययनों में भी पाया गया। प्रारम्भ में माता से वंचित होने के कारण व्यक्तित्व विकास में विकृति पायी जाती है।

ii) पिता का महत्व

माता की भाँति ही पिता की उपस्थिति और अनुस्थिति बच्चे के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। मिसकेल (1958) ने पाया कि बच्चे का समाजीकरण एवं विकास पिता की अनुपस्थिति से प्रभावित होता है। विशेषाकर पिता एवं बच्चे का सम्बन्ध बच्चे के यौन सम्बन्ध को प्रभावित करता है।

iii) अन्य पारिवारिक सदस्य

ऐसा अवलोकन किया गया कि यदि परिवार के सदस्य बच्चे को स्नेह देते हैं, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करते हैं, उसे अच्छी आदतें सिखाते हैं तो यह बातें निश्चित रूप से बच्चे में व्यक्तित्व में सकारात्मक पक्ष विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

iv) परिवार का आकार

सामान्यतः व्यक्तित्व के विकास को परिवार का आकार भी प्रभावित करता है। यदि परिवार में अधिक सदस्य होते हैं तो बच्चे की भाषा एवं अन्य मानसिक क्षमताएँ तीव्र गति से विकसित होती है। इसके विपरीत यदि बच्चा परिवार में एक मात्र होता है तो परिवार के सदस्यों द्वारा अधिक देख–रेख प्यार और स्नेह तथा वात्सल्य के कारण बच्चा दुराग्रही एवं उदण्ड हो जाता है।

1) परिवार का आर्थिक स्तर

परिवार की आर्थिक स्थिति भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। निर्धन परिवार के बच्चों में असुरक्षा एवं आत्म हीनता की भावना विकसित हो जाती है। इसी प्रकार सुविधाओं एवं पोषाहार की कमी के कारण उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

2) विद्यालय एवं समसमूह

पड़ोस एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जो व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करता है। बच्चे अनेक आदतें एवं व्यवहार पड़ोस में रहने वाले उन बच्चों से सीखते हैं जिनके साथ अन्तःप्रक्रिया करते हैं। पड़ोस के बच्चों के साथ अन्तःक्रिया करने से उसका बौद्धिक एवं सांवेगिक विकास भी प्रभावित होता है। एक निश्चित आयु का हो जाने पर बच्चा स्कूल जाने लगता है तथा स्कूल और समुदाय की स्थिति में समायोजन के प्रतिमानों का अनुभव करने लगता है। बच्चा विद्यालय में अध्यापक के व्यवहार तथा विद्यालयी पर्यावरण से प्रभावित होता है। बच्चे का स्वप्रत्यक्षीकरण प्रायः विद्यालय के अनुभवों के गुणों से स्पषट रूप से सम्बद्ध पाया जाता है। इस प्रकार बच्चे का सामाजिक एवं संवोगात्मक विकास विद्यालय के वातावरण एवं समवयी समूह द्वारा संरचित होता है।

3) सांस्कृतिक कारक

संस्कृति जिसमें कोई व्यक्ति रहता है, एक महत्वपूर्ण कारक है जो बच्चे के व्यवहार और विकास को प्रभावित करती है। विभिन्न समाजों में सांस्कृतिक भिन्नताएँ होती हैं तथा बच्चे के व्यक्तितव का स्वरूप संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों द्वारा संरचित होता है। बच्चों लालन–पालन के प्रतिमान, मूलय, आदर्श तथा प्रोत्साहन–पक्ष एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न होता है। विभिन्न संस्कृतियों में सहभागी अर्थ एवं व्यवहार का विद्यमान होना व्यक्तित्व के विभिन्न विशेषगुणों के विकास में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) यक्तित्व के प्रमुख निर्धारक क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 विकास का प्रतिमान

व्यक्ति के विकास के अध्ययन के लिए मुख्य रूप से विश्लेषाण के तीन स्तरों को विचारधीन रखना होगा :

i) **जैविक तंत्रः** शरीर में निकटतम समन्वयित शरीरक्रियात्मक अन्तःक्रियाएँ।

ii) **मनोवैज्ञानिक तंत्र अथवा व्यक्तित्व** : यह उद्देश्य, योग्यता, मान्यता तथा आत्म को घेरे समेकित रक्षा युक्तियों की संगठित अन्तःक्रिया सम्मिलित होती है। तथा

iii) **समाजशास्त्रीय या समूह तन्त्र** : इसके अन्तर्गत व्यक्ति की अपने परिवार या वृहद् समूह के सन्दर्भ में उसकी अन्तःक्रियाएँ होती हैं।

उपर्युक्त तीनों कारक विश्लेषाण के स्तर व्यक्ति और उसकी प्रकार्यात्मकता को पूर्णतः समझने के लिए महत्वपूर्ण है। यह तीनों व्यक्ति के व्यक्तित्व संरचित करने तथा व्यक्तित्व के विकास और वृद्धि को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

अतः इस बात को विचाराधीन रखना महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति में परिवर्तन अथवा विकास सदास एक प्रतिमानित परिवर्तन होता है। समस्त अन्तःक्रियात्मक तत्व तन्त्र इन परिवर्तनों के प्रतिमान को संरचित करने में सम्मिलित होते हैं।

विकास निर्धारण

मानव विकास एक सुनिश्चित निर्धारित क्रम में चलता हैं जो केवल शारीरिक और प्रेरक विकास में ही नहीं वरन् सांवेगिक, बौद्धिक तथा सामाजिक विकास के क्षेत्र में भी होता है। इस प्रकार एक शिशु चलने के पूर्व खिसकना और बैठना शुरू करता है, उसकी प्रारम्भिक सामान्य संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ प्रेम मनोरंजन एवं दुख में बदल जाती है। भाषा–व्यवहार भी दैव व्यक्तीकरण से शब्दोच्चारण की दिशा में प्रगति करता है जो विचारों का साधन बनता है।

विकास की प्रक्रिया शिक्षण और परिपक्वता की शक्तियों द्वारा संचालित होती हैं परिपक्वता सम्बन्धी प्रक्रिया हमारे शारीरिक संरचना के विकास को निर्देशित करती है तथा शिक्षण के मार्ग को प्रशस्त करती है, लेकिन हम जो कुछ किसी परिस्थितियों में सीखते हैं वह परिपक्वता पूर्ण सीखने की इच्छा और हमने जो पूर्व में शिक्षा प्राप्त की है – पर आधारित होता है। यह भी देखा गया कि विकास का प्रत्येक नया स्तर, पूर्व के विकास द्वारा सीमाबद्ध होता है तथा उपयुक्त समय पर प्रभाव डालता है तथा विकास की सफलतापूर्ण अवस्था के अंग के रूप में बना रहता है।

विकास कार्य

मानवीय विकास वृहद् रूप से छः मुख्य अवस्थाओं में विभाजित होता है। प्रत्येक अवस्था में परिपकवात्मक तथा सामाजिक दबाव कुछ विशिष्ट कार्यों को सुनिश्चित करते हैं जिस पर व्यक्ति संचालित करने में सक्षम होता है। यदि वह विकास की सामान्य स्थिति बनाए रखता है। अगर उचित विकास की अवस्था में कुछ कार्यों पर अधिपतय नहीं बनाया जाता तब व्यक्ति अपरिपक्वता और अक्षमता से पीड़ित होता है जो स्थाई रहने पर उसके भावीं विकास की अवस्थाओं में समायोजन को अवरूद्ध करता है।

मानव जीवन की छः अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यों जैसाकि ऐरिकसन (1950), हैविगहर्ट (1952), केगन एण्ड मोस (1962) तथा विटमर एण्ड कोटिन स्काई (1952) वर्णित किया है, निम्न प्रकार है–

व्यक्तित्व – विकास एवं समायोजन

जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्य

शैशव और प्रारम्भिक बाल्यावस्था (0–6 वर्ष)

शैशवावस्था में चलना और बात करना सीखना । ठोस खाना खाना तथा मूलमूत्र त्याग पर नियन्त्रण करना सीखना। शरीरक्रियात्मक स्थिरता प्राप्त करना। अपने आप तथा दूसरों

के प्रति विश्वास करना। माता–पिता, भाई–बहनों एवं अन्य लोगों से स्वयं को सम्बद्ध करने का कार्य सीखना। अपने यौन से आत्मसात स्थापित करना । भौतिक एवं सामाजिक वास्तविकता के प्रति साधारण आवधारणा विकसित करना। सामान्य सुरक्षा के नियमों पर आधिपत्य बनाना। गलत तथा सही के बीच भेद करना सीखना तथा इस सम्बन्ध मे नियमों और अधिपति को स्वीकार करना।

मध्य बाल्यावस्था (6–12 वर्ष)

मध्य बाल्यावस्था शारीरिक एवं भौतिक संसार के बारे में विस्तृत जानकारी एवं ज्ञान प्राप्त करना। स्वयं के प्रति सम्पूर्ण मनोवृत्ति स्थापित करना। स्त्री एवं पुलिंग की समुचित सामाजिक भूमिका सीखना। अन्तःमन की भावनाओं, नैतिकता तथा मूल्यों का प्रमाप विकसित करना। लिखना, पढ़ना एवं जोड़–भाग करना सीखना तथा अन्य मूलभूत बौद्धि क कौशल सीखना। शारीरिक कुशलता सीखना। सामाजिक समूहों तथा अन्य संस्थाओं के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना। विजय प्राप्त करना तथा अपने समवयी साथियों में अपना स्थान बनाए रखना। आदान–प्रदान करना तथा दायित्वों की सहभागिता ग्रहण करना। वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना।

किशोरावस्था (12–18 वर्ष)

किशोरावस्था आत्म निर्भरता एवं अपने अस्तित्व की समझ स्पषट करना। अपने शरीर को स्वीकार करना तथा शारीरिक परिवर्तन के साथ समायोजित होना। स्त्री व पुलिंग के रूप में सामाजिक भूमिका स्वीकार करना। अपने समवयी के साथ नए व गम्भीर सम्बन्ध स्थापित करना। माता–पिता तथा अन्य प्रौढ़ से सांवेगिक आत्म निर्भरता ग्रहरण करना। आत्म से इतर लोगों से सम्पर्क विकसित करना, परिपक्व मूल्य प्राप्त करना तथा समाजिक दायित्व ग्रहण करना। व्यवसाय के लिए स्वयं को तैयार करना तथा चयन करना। विवाह एवं पारिवारिक जीवन के लिए तैयार होना। दायित्वों को लेना तथा चयन करना सीखना। उपयुक्त सांसारिक चित्र के साथ समरसता में सचेत मूल्य तन्त्र निर्मित करना।

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था (18–35 वर्ष)

पूर्व प्रौढ़ावस्था इस अवस्था में शिक्षापूर्ण होना किसी व्यवसाय का प्रारम्भ करना। पति–पत्नि का चयन व साथ रहना सीखना। पारिवारिक जीवन प्रारम्भ करने तथा अपने बच्चों की मनोवैज्ञानिक एवं वस्तु सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी करना। उचित सामाजिक समूह ढूढ़ना। नागारिक के रूप में उत्तरदायित्व ग्रहण करना। जीवन सम्बन्धी संतोषाजनक दर्शन विकसित करना।

मध्यावस्था (35–60 वर्ष)

मध्यावस्था अधिक महत्वपूर्ण नागरिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व स्वीकार करना। पति–पत्नि से व्यक्तिगत वृद्धि प्राप्त करना तथा व्यक्ति के रूप में पति–पत्नि से सम्बन्ध बनाना। जीवन का एक स्तर स्थापित करना तथा भावी वर्षों के लिए उपयुक्त वित्तीय सुरक्षा विकसित करना। प्रौढ़ के रूप में खाली समय में क्रियाकलाप करना तथा रुचियों को विकसित करना। किशोरावस्था के बच्चों को उत्तरदायी एवं प्रसन्न प्रौढ़ बनने में सहायता करना। वृद्ध अभिभावकों के साथ समायोजित होना। इस अवस्था में होने वाले शरीरदृक्रियात्मक परिवर्तनों को स्वीकार करना तथा उनके साथ समायोजन करना।

साठेत्तर जीवन क्षीण हो रही शारीरिक शाक्तियों के साथ समायोजिक होना। सेवा निवृत्ति एवं घटी आय के साथ समायोजित होना तथा संतोषाजनक रूप से रहने के लिए सभी अवस्थाओं के सामान्य–कार्य जीवन की व्यवस्था करना। मित्रों अथवा पति–पत्नि की मृत्यु

की सहनशीलता। अपनी क्षमतानुसार नागरिक व सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करना। अपने समवयी समूह के लोगों से संबंध स्थापित करना। अपने आप के अतिरिक्त सक्रिय रुचि एवं सम्बद्धता स्थापित करना।

समस्त अवस्थाओं के अपनी शारीरिक सामाजिक एवं सांवेगिक क्षमताओं का विकास सामान्य कार्य और उपयोग करना। अपने आपको स्वीकार करना तथा आधारभूत आत्म–विश्वास विकसित करना। वास्तविकता को स्वीकार करना तथा उचित मनोवृत्ति एवं मूल्यों का निर्माण करना । परिवार एवं अन्य समूहों के साथ रचनात्मक एवं दायित्वपूर्ण ढंग से सहयोग करना। अपने संसार से उपयोगी सम्पर्क निर्मित करना।

परिपक्वता की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण मार्ग निम्नलिखित हैं–

1) आत्म–निदेशन के प्रति निर्भरता

परिपक्वता के प्रति विभिन्न मार्गों में एक रास्ता गर्भ से शिशु तथा बालक से आत्म निर्भर प्रौढ़ावस्था तक है। आत्म निर्भरता एवं आत्म निर्देशन की दिशा में वृद्धि प्रौढ़ उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में एक समेकित संरचना का विकास है।

2) वास्तविक के प्रति आनन्द

फ्रायड ने इंगित किया है कि–प्रारम्भिक व्यवहार के नियन्त्रण में आन्नद का सिद्धान्त मूलभूत है। यह विचार वास्तविकता के सिद्धान्त का सहयोगी है जिसके अन्तर्गत यह स्वीकार्य है कि यदि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं तो हम प्रत्यक्षीकरण करना एवं वास्तविकता का सामना करना सीखें।

3) ज्ञान के प्रति अनभिज्ञता

मानव शिशु सम्पूर्ण अनभिज्ञता की अवस्था में जन्म लेता है तथा शीघ्र ही अपने तथा अपने आस–पास के बारे में सूचनाएँ प्राप्त करना प्रारम्भ कर देता है। एक निश्चित अवधि में, यह सूचनाएँ वास्तविकता से सम्बन्धित समेकित प्रतिमान मूल मान्यता, मूल्य तथा सम्भावनाओं के रूप में संगठित होती है जो उसे अपने व्यवहार को निर्देशित करने के लिए स्थाई संरचना का सन्दर्भ प्रदान करती है।

4) सक्षमता के प्रति अक्षमता

शैशवाकाल से लेकर किशोरावस्था तक की समस्त अवस्था, बौद्धिक, सांवेगिक, सामाजिक तथा प्रौढ़ावस्था के लिए अनिवार्य अन्य क्षमताओं में विशिषटता प्रापत करने की दिशा में निर्देशित होती है।

5) विषाम लैंगिकता के प्रति विसरित लैंगिकता

परिपक्वता की दिशा में व्यक्ति की वृद्धि में एक महत्वपूर्ण विकास लैंगिक विकास होता है। प्रारम्भिक आयु में लैंगिकता का प्रदर्शन विषाय एवं सामान्कृत पाया जाता है। बाद के शैशवाकाल में रुचि एवं सांवेगिक भावनाएं समलिंगी सदस्यों की ओर निर्देशित होती है। यौवनारम्भ के साथ विषामलिंगी भिन्नताएं तीव्रगति से प्रगति करती हैं। लैंगिक व्यवहार में परिपक्वता केवल निर्देशित ही नहीं होती वरन् विपरीत लिंग के सदस्य के प्रति इच्छाा सम्मिलित होती है।

6) नैतिक के प्रति अनैतिक

नवजात शिशु को अच्छे या बुरे, सही या गलत की अवधारणा का ज्ञान नहीं होता। धीरे–धीरे वह मूल्य मान्यताओं के प्रतिमान सीखता है जो आन्तरिक निर्देशक के रूप

में कार्य करते हैं या व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं जिसको हम उसकी अन्तरात्मा या पराह के रूप में सन्दर्भित करते हैं।

7) आत्म केन्द्रित से अन्य केन्द्रित

परिपक्वता की दिशा में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मार्ग व्यक्ति का धीरे–धीरे मात्र अपने आप के बारे में विचार करने तथा अपनी आवश्यकताओं तक सीमित रहने की स्थिति से सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझने और स्वीकार करने तथा मानवीय कार्यों में सम्मिलित होने तक है। इसके अन्तर्गत अपने परिवार को प्यार प्रदान करने की क्षमता तथा सामान्य रूप से अपने समूह और समाज के कल्याण में योगदान देना सम्मिलित किया जाता है।

विकास में विभिन्नता

सभी मानव विकास की समान अवस्थाओं से विकसित होते हैं वरन् वे जो विशेषाक विकसित करते हैं उनमें हम भिन्नता का अवलोकन करते हैं। विशेषागुण शब्द (पद) व्यक्ति की भिन्नता योग्यता तथा तुलनात्मक दृष्टि से सहनशीलता के चरित्र की ओर इंगित करता है। विशेषाकों में भिन्नता उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझी जा सकती है कि अधिकांश लोग मध्यस्त या सामान्य (औसत) बौद्धिक क्षेत्र में पाए जाते हैं जबकि कुछ लोग उच्चतम छोर की असाधारण बौद्धिक स्तर तथा कुछ लोग दूसरे उच्चतम छोर की बुद्धि के पाए जाते हैं।

कुछ भी हो यह भिन्नता एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की तुलना में निम्न बातों के आधार पर हो सकती है –

क) एक निश्चित शारीरिक विशेषक की प्रकृति में जैसे रक्त के स्वरूप तथा त्वचा के रंग में भिन्नता देखी जाती है।

ख) भिन्नताएँ जिसमें एक विशिष्ट विशेषक विकसित होता हैं

ग) विशेषकों का समाकलन अथवा उनमें समरूपता तथा

घ) विशेषगुण के सम्पूर्ण प्रतिमान, जिसे हम व्यक्तित्व की संज्ञा होते हैं। एक निश्चित सीमा तक की भिन्नता को हम सामान्य मानते हैं, ये तभी असामान्य मानी जाती हैं जब यह इस उच्चतम सीमा तक हो कि व्यक्ति की अनुकूलन सम्बन्धी क्षमताओं को गम्भीर सीमा तक हानिकारक/विघटनकारी बना दें।

अनेक महत्वपूर्ण कारक हैं जो एक विशिष्ट विशेषगुण को प्रभावित करते हैं। एक व्यक्ति के विकास में विशेषगुण अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। ऐसा तभी होता है जब इसकी स्थिति अत्यधिक उच्च या औसत से निम्न होती है। एक निश्चित विशेषक की सार्थकता सभी विशेषगुणों के प्रतिमानों पर आधारित होती है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) व्यक्ति के विकास के अध्ययन हेतु, विचाराहीन रखी गई विश्लेषण के स्तर को परिमापित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) विभिन्न आयु समूहों के विकासात्मक कार्यों (गुणों) को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 व्यक्तित्व की बाहरी छवि और व्यक्ति के व्यवहार के रूप में

व्यक्तित्व का बाह्य स्वरूप मानव के जैविक अंग से सम्बन्धित होता हैं शारीरिक तन्त्र तरल पदार्थ, अस्थि, त्वचा तथा माँसपेशियों संयोजी एवं तन्त्रिका ऊतकों से निर्मित होता है ये तत्व जीवन के शारीरिकक्रिया विज्ञान की रचना करते हैं।

अनेक ऐसे तथ्य विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि 'मन' एवं शरीर एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। जब मस्तिष्क क्षतिग्रस्त अथवा इसका छोटा सा अंश निकाल दिया जाता तो व्यक्तित्व में विक्षोभ होता है यद्यपि प्रायः उससे कम होता है जैसा कोई अपेक्षा करता है बाह्य संरचना में अतिरिक्त यह दूसरों में अपने पक्ष की भावना विकसित करने की इच्छा होती है। प्रथम दृष्टया प्रभाव दूसरों को कुछ चिन्ह प्रदान करता है जिससे यह देखने वाले के व्यक्तित्व को समझ सके। इसके अतिरिक्त, प्रथम दृष्टया प्रभाव यह सुनिश्चित करता है कि अन्य लोग उससे क्या अपेक्षा करेंगे, उनकी अपेक्षाएँ, एक निश्चित समय में उसके व्यवहार को प्रभावित करती हैं। किसी व्यक्ति का प्रथम दृषटया प्रभाव उसकी शारीरिक संरचना पर आधारित होता है, चेहरे का हावभाव या उतार–चढ़ाव, शारीरिक क्रियाकलाप, वस्त्र, नाम, राषट्रीयता, प्रजाति और जो व्यक्ति कहता है कैसे करता है, वह क्या करता है और कैसे करता है या कुछ और शारीरिक या मनोवैज्ञानिक चारित्रिक गुण जिससे अवलोकनकर्ता के मन में एक निश्चित प्रकार के व्यक्तित्व की धारणा विकसित हो जाती है।

बाह्य शारीरिक संरचना के आधार पर शेल्डन ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित प्रकारों का वर्णन किया है :

1) **एण्डोमार्फिक** : पहचान स्वरूप इसमें गोलाकार, चिकना, नरम, बड़ा उदर, पतला हाथ–पैर (शाखा) आदि।

2) **मेसोमार्फिक** : इसकी प्रवृत्ति भारी अस्थियाँ व माँस पेशियाँ, चौकोर शरीर आदि है।

3) **एक्ओमार्फिक** : इसकी प्रकृति में पतलापन, हाथ–पैर का सीधा होना तथा दुबला–सुन्दर आदि है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार उपर्युक्त तीन प्रकारों में से किसी प्रकार वणित किया जा सकता है। शेल्डन के अनुसार व्यक्तित्व का प्रकार स्थितियों में विशिष्ट समाकलन पर निर्भर है। व्यक्ति के प्रकार तथा शारीरिक रूप से उसे वर्णित करने हेतु उपर्युक्त तीन आँकड़े लिए जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि बाह्य शारीरिक संरचना एवं व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व को समझने के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) शेल्डन द्वारा इंगित व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 समाज कार्य व्यवहार के लिए व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की आवश्यकता

मानव की मनोसामाजिक और व्यावहारिक समस्याओं के समाधान की दिशा में समाजकार्य व्यवहार एक व्यावसायिक दृष्टिकोण है। यह मानव जीवन से सम्बन्धित, व्यक्तित्व के विकास में वृद्धि सहित, समस्त पक्षों के क्षेत्र में कार्य करता है। कुछ समाज विज्ञानी समाजकार्य को व्यावहारिक विज्ञान के रूप में मानते हैं। यह भी स्वीकार्य किया जाता है कि समाजकार्य द्वारा प्रदत्त सेवाएँ तभी लाभकारी होंगी जब कार्यकर्ता को समस्याएँ तथा मनोलैंगिक विकास की प्रकृति एवं स्तर के बारे में आधारभूत जानकारी प्राप्त होंगी। मनोसामाजिक समस्याओं के निदान एवं उपचार के लिए व्यक्तित्व मूल्यांकन, विकास की विभिन्न अवस्थाओं के कार्य/गुणों के बारे में सामाजिक कार्यकर्ता को जानकारी अवश्य होनी चाहिए। अपनी क्षमती के विकास के लिए व्यक्तित्व विकास का अध्ययन व्यवहारगत सामाजिक कायकर्ता के लिए सहायक होता है।

बोध प्रश्न V

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की सामाजिक कार्यकर्ता की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

एक सामान्य व्यक्तित्व द्वारा व्यक्तित्व शब्द का उपयोग इसके तकनीकी शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ में उपयोग किया जाता है। एक सामान्य व्यक्ति 'व्यक्तित्व' शब्द का उपयोग केवल व्यक्ति की बाह्य स्वरूप के संदर्भ में करता है। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'परसोना' से हुई है जिसका अर्थ मुखौटा होता है। मनोवैज्ञानिक साहित्य में व्यक्तित्व को विभिन्न कोणों से परिभाषित किया गया है। सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा आलपोर्टश द्वारा दी गई है। कुछ लोग व्यक्तित्व के रूप में ही चरित्र, स्वभाव एवं आत्म का भी उपयोग करते हैं परन्तु इन शब्दों का भिन्न अर्थ है। व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भिक शैशवाकाल से आरम्भ होता है।

सभी व्यक्ति अपने आप में अद्वितीय होते हैं इसलिए व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों को समझने की आवश्यकता होती है। आनुवांशिक एवं पर्यावरण व्यक्तित्व के निर्धारकों में महत्वपूर्ण हैं। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के अध्ययन में तीन स्तर के विश्लेषाण सम्मिलित होते हैं ये जैविक तंत्र, मनोवैज्ञानिक तंत्र और समाजशास्त्री या समूह तंत्र हैं जीवन के विभिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न विकासात्मक कार्य/गुण होते हैं। सभी मानव वृद्धि की समरूप अवस्थाओं से गुजरते हैं लेकिन उनमें विभिन्नता पाई जाती है।

व्यक्तित्व का वाह्य स्वरूप (संरचना) मानव के जैविकी अंग से सम्बन्धित होता है जैसा कि समाजकार्य मानव जीवन के सभी पक्षों से सम्बद्ध होता है इसलिए व्यवहारगत सामाजिक कार्यकर्ता के लिए व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना अत्यन्त औचित्यपूर्ण होता है।

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

व्यक्तित्व : व्यक्तित्व सामाजिक उद्दीपन के प्रति व्यक्ति की चारित्रित प्रतिक्रियाँ तथा उसके पर्यावरण को सामाजिक खण्डों के अनुकूलन के गुण हैं।

स्वभाव : अपने पर्यावरण के प्रति व्यक्ति की विशिषट प्रतिक्रिया का स्वरूप है।

आत्म : एक व्यक्ति का संप्रत्यय कि व्यक्ति किस प्रकार का है, आत्म है।

कार्य/गुण : एक प्रकार्य जो क्रियान्वित किया जाय।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एच. वर्नरः (1957), *कम्परेटिव साइकालोजी ऑफ मेंटल डेवलपमेंट*, रिव.इडी. न्यूयार्क, इन्स्ट, प्रेस।

ओ., स्ट्रस्कः (1958), ऐटीट्यूड टुवर्डस वन्स नेम एण्ड वन्स सेल्फ, *इन्डीवीडुअल साइकालोजी*, 14, 64–67।

कोल मौनः (1964), *ऐबनार्मल साइकोलोजी* एण्ड माडन लाइफ।

चार्ल्स जास्ट्रोः (1978), *इन्ट्रोडक्शन टू सोशल वेलफेयर ऐडमिनिस्ट्रेशन*, दी प्रेस होम वुड इलीन्वायस।

गिल्फोड, जे.पी.: (1959), *पर्सानालिटी,* मैकग्रहिल न्यूयार्क ।

कक्कड़, सुधीरः दी इन्नर वर्ल्ड–एक साइकोएनालिटिक स्टडी ऑफ चाइल्डहुड एण्ड सोसाइटी इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस–देहली।

लीबर्ट, आर,: एम.डी. स्ट्रेटिजीज एण्ड इसूज, कैलीफोर्निया बुक्स ।

एम.एण्ड स्पीगलर कोल (1958)।

परवीन, एल.ए., पर्सनाल्टीः थियरी ऐसेस्मेंट एण्ड रिसर्च, शिकागो, रैण्डी मैक नैली।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) आलपोर्ट द्वारा प्रदत्त व्यक्तित्व की परिभाषा में निम्नलिखिक प्रमुख शब्द हैं :

   क) गतिशी संगठन।

   ख) मन

   ग) शरीर/ देह

   घ) भाववृत्ति/भावना

   ड) विशेषगुण

   च) चरित्र/गुण एवं

   छ) विचारधारा

2) व्यवहार और विचारधारा व्यक्ति के अद्वितीय चरित्र का गुण है। ये दो शब्द ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो व्यक्ति की परिभाषा क्रिया का मार्ग प्रशस्त करते हैं विशेषाकर ऐसा कार्य जो वह पर्यावरण के साथ समायोजन के लिए करता है।

बोध प्रश्न II

1) आनुवांशिक एवं पर्यावरण व्यक्तित्व के मुख्य निर्धारक तत्व हैं।

बोध प्रश्न III

1) व्यक्ति के विकास के अध्ययन हेतु विचाराधीन विश्लेषाण के निम्नलिखित तीन स्तर है

   क) जैविक तंत्र।

   ख) मनोवैज्ञानिक तंत्र अथवा व्यक्तित्व ।

   ग) समाजशास्त्र अथवा समूह तंत्र।

2) मानव विकास वृहद् रूप से छः अवस्थाओं में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक अवस्था में परिपक्वता तथा सामाजिक दबाव के आधार पर अपेक्षा की जाती है कि व्यक्ति कुछ निश्चित विशिष्ट कार्यों/गुणों पर अपना वर्चस्व स्थापित करें ताकि वह विकास सामान्य पाठ्यक्रम बनाये रख सकें।

बोध प्रश्न IV

1) शेल्डन द्वारा प्रदत्त व्यक्तित्व के प्रकारों का उल्लेख निम्न प्रकार हैः

   क) एन्डेमार्फिक

   ख) मेसोमार्फिक

   ग) एक्टोमार्फिक

बोध प्रश्न V

1) सामाजिक कार्यकर्ता के व्यक्ति के विकास के अध्ययन की आवश्यकता निम्न प्रकार हैः

   सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्ति की सांवेगिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहायता करता है। ऐसा केवल तभी सम्भव है जब उसे समस्याओं, विशेषाकर सभी पक्षों, तंत्रों, विशेषाकों तथा व्यक्तित्व के प्रकारों तथा इसके विकासक्रम, की समेकित जानकारी हों।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 व्यक्तित्व निर्धारण : आनुवंशिकता और पर्यावरण की भूमिका

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 व्यक्तित्व विकास में अनुवंशिकता की भूमिका

2.3 व्यक्तित्व विकास में पर्यावरण की भूमिका

2.4 व्यक्तित्व विकास में सीखने की भूमिका

2.5 सामाजीकरण की प्रक्रिया तथा व्यक्तित्व के विकास में समाजीकरण की भूमिका

2.6 आनुवंशिकता तथा पर्यावरण का तुलनात्मक महत्व

2.7 व्यक्तित्व का गठन

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य व्यक्तित्व के निर्धारकों की जानकारी कराना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- आप व्यक्तित्व विकास में आनुवंशिकता, सीखने तथा पर्यावरण की भूमिका की व्याख्या कर सकेंग;
- समाजीकरण की प्रक्रिया तथा व्यक्तित्व विकास में इसकी भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;
- व्यक्तित्व विकास में अनुवांशिकता तथा पर्यावरण के तुलनात्मक महत्व की विवेचना कर सकेंगे; और
- व्यक्तित्व के गठन के स्वरूप की समीक्षा कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

ज्यों–ज्यों सामाजिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक जटिल होता जाता है, व्यक्तित्व के महत्व में वृद्धि होती है। एक जटिल समाज में एक सुखद, मनोहर व्यक्तित्व का विक्रय मूल्य महत्व होता है तथा उसे अधिक परिष्कृत कर उसकी तलाश दी जाती है। व्यक्तित्व शब्द लैटिन शब्द 'पर्सोना' से लिया गया है जिसका अर्थ मुखौटा, आवरण होता है। ग्रीक के लोगों में कलाकर मंच पर अपनी पहचान छुपाने के लिए मुखौटों का प्रयोग करते थे। इस नाटकीय प्रविधि को बाद में रोम के लोगों द्वारा अपनाया गया जिसके लिए पर्योना का सबै अर्थ होता था "दूसरों की दृष्टि में कोई कैसा दिखलाई पड़ता है" यह नहीं का वास्तव में वह कैसा है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व की भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं। वे व्यक्तित्व को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं ताकि इसमें उत्प्रेरक तथ्यों के साथ ही साथ अन्य दूसरे विशिष्ट पक्षों का समावेशन हो। इन सभी परिभाषाओं में गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट द्वारा प्रस्तावित एक व्यापक क्षेत्र में स्वीकृत मान्यता प्राप्त, लघु पर सभी पक्षों को सम्मिलित करती हुई परिभाषा है। इनके अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो परिवेश के प्रति होने वाले उसके अपूर्व अभियोजनों का निर्णय करते हैं।"

2.2 व्यक्तित्व विकास में अनुवांशिकता की भूमिका

व्यक्तित्व प्रतिमान व्यक्ति के आनुवंशिक प्रतिमानों पर आधारित होता हैं यह घर के भीतर तथा बाहर लोगों के साथ दीर्घकृत सामाजिक सम्बन्धों की दशा में सीखने की उत्पत्ति है। जैसा कि सैण्डर्सन ने कहा है व्यक्तित्व ग्रन्थिल स्थल या उन अनुभवों के जिन्हें विशिष्ट महत्व प्राप्त है, के चारों ओर संगठित होता है।

गर्भधारण के समय प्रत्येक नवीन मानव आनुवंशिकता प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार एवं जीवनपर्यन्त विकास के लिए समस्त अन्तःशक्तियों को प्रदत्त करता है। इस प्रतिभा में विशिष्ट कौशल, योग्यता, क्षमता, आचरण, व्यवहार के प्रक्रम तथा वृद्धि के प्रतिमान तथा सम्पूर्ण जीवन चक्र में परिवर्तन की शारीरिक अन्तःशक्ति सम्मिलित है।

आनुवंशिकता की प्रक्रिया

गर्भाधारण के समय स्त्री पुरुष कोषाणु गर्भधारण किए हुए डिम्ब में लगभग 46 गुणसूत्र होते हैं जिसमें माता–पिता में से प्रत्येक से आधे–आधे होते हैं। गुणसूत्र कीटाणु की अतिलघु धागे के समान संरचना वाले होते हैं जिनमें सैकड़ों अतिसूक्ष्मदर्शी कण होते हैं जिन्हें जीन्स कहा जाता है जो एक व्यक्ति की आनुवंशिकता के वास्तविक वाहक होते हैं। इसके साथ कहा ही गुणसूत्र, कीटाणु सम्भवतः 10 से 15 हजार जीन्स होते हैं। इसमें से एक जटिल अणु, जो हजारों अतिसूक्ष्म एक विशिष्ट व्यवस्था में निर्मित होते हैं। जीन्स कोषाणुओं की विशेषताओं को व्यक्तित्व विकास के लिए ले जाते हैं और उसकी इकाई प्रौढ़ के रूप में वृद्धि करने की दिशा को निर्देशित करते हैं। आनुवंशिकता में प्राप्त इस संरचना में व्यावहारिक की क्षमताएँ निहित हैं

आनुवंशिकता की भूमिका

व्यक्तित्व का स्वरूप आंतरिक रूप से निर्धारित होता है और घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं जो व्यक्ति के आनुवंशिक विशेषताओं को निर्मित करते हैं यद्यपि सामाजिक और अन्य पर्यावरणीय कारक भावी व्यक्तित्व के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। यह बाहर से टपकाई हुई एवं नियंत्रित ही नहीं होती है अपितु व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं से उद्विकसित होता है। व्यक्ति की शारीरिक संरचना एवं बुद्धि, स्वभाव आदि आनुवंशिकता के परिणाम हैं। एक व्यक्ति का विकास किस प्रकार का होगा यह पर्यावरण पर निर्भर होता है जिस में व्यक्ति विकसित होता है। व्यक्तित्व के प्रतिमान को नियरित करने में आनुवंशिक आधार के महत्व को अनेक आनुवंशिकर्ताओं द्वारा प्रतिबलित किया गया है। सामान्यतः यह कहा गया है कि व्यक्तित्व महत्वपूर्ण व्यक्तियों जैसे सर्वप्रथम माता, बाद में पिता एवं अन्य भाई–बहन तथा इसके बाद परिवार के अन्य सदस्यों की शिशु के साथ अन्तःक्रिया से निर्मित होता है। इस अन्तःक्रिया में शिशु की जैवकीय संरचना, अनेक आवश्यकताओं सभी बौद्धिक क्षमताएँ भी सम्मिलित हैं जो उस विधि का निर्धारण करती हैं कि उसके पर्यावरण में महत्वपूर्ण व्यक्ति उसके प्रति किस प्रकार का व्यवहार करते हैं।

अनुवंशिकता तथा पर्यावरणीय कारकों के मध्य अन्तःक्रिया के दौरान एक व्यक्ति यह चुनाव करता है कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति किस से होती है और इन चीजों को अस्वीकार कर देता है जो उसकी आवश्यकता की पूर्ति योग्य नहीं है। इस प्रकार व्यक्तित्व के प्रतिमान पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया के माध्यम से, जिसे व्यक्ति ने स्वयं दीक्षित किया है, विकसित होता है।

व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता की भूमिका को प्रतिबलित करने का एक कारण इस बात को मान्यता प्रदान करना है कि व्यक्तित्व का प्रतिमान नियंत्रण का विषय है। एक व्यक्ति जो आनुवंशिकता में निम्न स्तर की बुद्धि प्राप्त करता है, उदाहरण के लिए सर्वाधिक अनुकूल पर्यावरण की दिशाओं में भी एक ऐसे व्यक्तित्व के प्रतिमान को विकसित नहीं कर सकता है जो उसके पर्याप्त वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन में सहायक हो अपेखाकृत उस व्यक्ति के जिसका समायोजन का स्तर उच्च है। इस प्रकार आनुवंशिकता व्यक्ति के विकास को सीमाबद्ध करती है।

इसके अतिरिक्त आनुवंशिकता द्वारा लगायी गयी सीमाएँ इस सत्य को रेखांकित करती है कि व्यक्ति जैसा चाहता है, उस प्रकार के व्यक्तित्व प्रतिमान का चयन करने तथा उसे विकसित करने के लिए पूर्णरूप से स्वतंत्र नहीं है। बुद्धि को पुनः उदाहरण के रूप में प्रयोग करते हुए कहा जा सकता है कि निम्न स्तर की बुद्धि रखने वाला व्यक्ति एक नेता के व्यक्तित्व के प्रतिमान को विकसित नहीं कर सकता है यद्यपि कि वह ऐसा चाहता है और यद्यपि की उसमें एक नेतृत्व के लिए आवश्यक विशेषता से युक्त व्यक्तित्व को विकसित करने के प्रयास की प्रबल अभिप्रेरणा है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) अपने शब्दों में व्यक्तित्व विकास में पर्यावरण की न्यायोचितता बताइए।

.....

.....

.....

.....

2.3 व्यक्तित्व विकास में पर्यावरण की भूमिका

कोई भी विशेषता आनुवंशिकता पर इतना निर्भर नहीं है कि उसे अपने विकास के लिए अल्पमत रूप में पर्यावरणीय दशाओं की आवश्यकता न हों यह भौतिक विशेषताओं के लिए भी सत्य है और निःसंदेह बौद्धिक, सामाजिक तथा सांवेगिक विशेषताओं के लिए तो और भी अधिक सत्य है। किसी भी दिए गए क्षण में एक व्यक्ति अपनी आनुवंशिक प्रतिभा तथा भौतिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण के मध्य अनगित अन्तःक्रियाओं की उत्पत्ति है। भौतिक पर्यावरण से हमारा तात्पर्य व्यक्ति के घेरे रहने वाले प्राकृतिक संसार से है : यथा जलवायु, भूभाग, खाद्य आपूर्ति, रोग, रोगाणु एवं अन्य। सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण से हमारा तात्पर्य व्यक्तियों, प्रथाओं, मूल्यों तथा मानव निर्मित उद्देश्यों से हैं।

पृथ्वी पर लोग विभिन्न प्रकार की जलवायु, भूभाग तथा प्राकृतिक संसाधनों के बीच रहते हैं। कुछ घने जंगलों में रहते हैं और कुछ बंजर रेगिस्तान में रहते हैं, कुछ ऊँचे पर्वतों पर

रहते हैं और दूसरे समतल प्रेयरी भूमि पर रहते हैं। कुछ ऐसे स्थानों पर निवास करते हैं जहाँ अत्यधिक ठंड होती है, और दूसरे ऐसे स्थानों पर जहाँ असहय कठोर गर्मी पड़ती है, कुछ ऐसे स्थानों पर निवास करते हैं, जहाँ अधिक समय वर्षा होती है, और दूसरे वहाँ निवास करते हैं जहाँ भयानक सूखा पड़ता है। कुछ स्थानों पर भोजन एवं अन्य संसाधन प्रचुर मात्रा में है, तथा कुछ स्थानों पर इतने कम हैं कि अधिकतर संख्या में वयक्ति का जीवन मुश्किल से जीवन निर्वाह करने में बीतता है। कुछ क्षेत्र रोगों तथा शारीरिक सुरक्षा के संकट से घिरे हैं। तुलनात्मक रूप से कुछ स्थान रोग तथा खतरों से मुक्त है।

जलवायु और भूभाग

लोग जो ऐसे क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ की जलवायु और भूभाग प्रतिकूल हैं उनमें अनुकली दैहिक परिवर्तन की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए एस्कीमों की परिसंचारी व्यवस्था मोटी सुरक्षात्मक कवच के भीतर गहराई में रहती है जो उसके शारीरिक ऊष्मा को बनाये रखती हैं।

अभाव, रोग और अन्य प्रतिकूल दशाएँ

आज भी करोड़ों लोग ऐसे क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ रोग फैले हुए हैं और खाद्यान्न की आपूर्ति अपर्याप्त है। ऐसी दशा में आश्चर्यजनक रूप से शारीरिक ओज को कम करती है, क्योंकि विपरीत भौतिक, दशाएँ उस विधि को प्रभावित करती हैं जिसमें एक समूह रहता है तो हम यह मान्यता बना सकते हैं कि वे भी कम से कम अप्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ प्रत्येक सदस्य के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करती हैं। फिर भी सुनिश्चित प्रभाव का आंकलन करना कठिन है क्योंकि पुनः हम विशिष्ट रूप से यह पाते हैं कि सांस्कृतिक कारण सम्पूर्ण स्थिति को जटिल बना देते हैं। व्यक्ति पर पड़ने वाले भौतिक पर्यावरण के प्रभाव एवं विकास में समूह की भिन्नता विशिष्टता का मूल्यांकन करना अत्यन्त ही कठिन है। केवल उन दशाओं में जहाँ प्रतिकूल परिस्थितियाँ वास्तव में शारीरिक क्षति पहुचती है, जैसा कि कुपोषण तथा रोग की दशा में भौतिक पर्यावरण की भूमिका सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण की भूमिका से कम महत्वपूर्ण है।

सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण

लगभग उसी रूप में मनुष्य पैतृक रूप में आनुवंशिकी को प्राप्त करती है जो कि परिणाम है, लाखों वर्षों के विकासवादी इतिहास की उपज का, इसलिए वह ऐसी सामाजिक सांस्कृतिक उदृविकास के कई हजार वर्ष का परिणाम उपज है। इस पैतृकता में नाटकीय रूप से एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह में भिन्नता पायी जाती है पर संसार की समस्त संस्कृतियों में पर्याप्त समानताएँ हैं जो हमें मानव संस्कृति के सम्बन्ध में अर्थपूर्ण ढंग से बोलने हेतु समर्थ बनाती है। उदाहरण के लिए प्रत्येक समूह की अपनी एक भाषा होती है, परिवार एवं सामाजिक संरचना, प्रथाएँ, मूल्य, संगीत तथा कला होती हैं ये संस्थाएँ विशेषतामूल मानवीय होती हैं और प्रत्येक समाज में समान साधनों द्वारा संचारित होती हैं कभी–कभी निर्देश सोचे समझे होते हैं, परन्तु प्रतीत ऐसा होता मानों किंचित प्रायः ये नहीं होते निम्नलिखित वे प्रमुख साधन हैं जिनके द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण व्यक्ति के विकास के ऊपर अपने प्रभाव का प्रयोग करता है।

i) समूह सदस्यता तथा अनुदेश

जानबूझ कर और अचेतन दोनों रूपों में प्रत्येक समाज अपनी अवधारणाओं, मूल्यों एवं स्वीकृत व्यवहार की शिक्षा अपने बच्चों को देता है। इस प्रकार के अनुदेश, शिक्षा, उपदेश, सामाजिक संस्थाओं यथा घर, विद्यालय, मन्दिर और उसके समकक्ष द्वारा दिये जाते हैं। इस प्रकार से व्यवस्थित अनुदेश के साथ ही साथ बड़ों द्वारा प्रस्तुत

उदाहरण या दूसरे आदर्श कुछ न कुछ सीमा तक एकरूपता लाने का प्रयास करते हैं और विशिष्ट समाज में मूल व्यक्तित्व के प्रकार को स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

एक व्यक्ति के मूल व्यक्तित्व की संरचना केवल अपेक्षाकृत अधिक बड़े सामाजिक समूह द्वारा ही नहीं प्रभावित होती है अपितु अनेक उपसमूह, जिसका वह सदस्य हैं, उससे भी प्रभावित होती है और जैसे उसके परिवार के सदस्यों, फर्म, पेशे, सामाजिक वर्ग, आयु, एवं लिंग पर आधारित समूह कुछ मूल्यों, विश्वासों तथा अनुमोदित व्यवहार प्रतिमान जो सम्पूर्ण समाज द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध के विषयवस्तु हो सकता है। यह वास्तविकता कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ भिन्न प्रकार के उपसमूह का सदस्य होता है में वैयक्तिक भिन्नता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अपेक्षाकृत बड़े सांस्कृति की सामान्य सदस्यता कमोवेश प्रत्येक को समान बनाती है।

समूह जिससे एक व्यक्ति तादात्मीकरण स्थापित करता है या जिस समूह से वह अपनी पहचान स्थापित करना चाहेगा उसे 'संदर्भ समूह' कहते हैं, क्योंकि उसकी समूह के प्रतिमानों तथा मूल्यों के संदर्भ में वह अपने लक्ष्य, व्यवहार का स्वरूप तैयार करता है और अपनी योग्यता का मूल्यांकन करता है।

कभी–कभी संदर्भ समूह जिससे व्यक्ति पृथक किया गया है वह व्यक्त के ऊपर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव रखते रखते हैं।

ii) स्तर और भूमिका

प्रत्येक समाज संरचना में अध्यापक, तिरखान या खाती माता–पिता, विद्यार्थी, बच्चे सभी लोग किसी न किसी रूप में अपना योगदान देते हैं। प्रस्थिति के साथ विशेषाधिकार एवं उत्तरदायित्व दोनों जुड़े हैं। उदाहरणार्थ चिकित्सक को औषध में पेशा (व्यवहार) करने का विशेषाधिकार है और उसे समाज के अन्य सदस्यों द्वारा उच्च सम्मान, अधिकार दिया जाता है। इसके प्रतिफल (बदले) में उसे उससे वृत्ति की नैतिक संहिता का अनुकरण करने की अपेक्षा की जाती है। यदि वह ऐसा करने में असफल हेता है तो उसका चिकित्सकीय अनुज्ञापन रद्द किया जा सकता है तथा उसे अधोवर्ती सामाजिक श्रेणी (स्थिति) में रखा जा सकता है।

किसी व्यक्ति को प्रदत्त सामाजिक स्थिति एवं प्रस्थिति से सम्बन्धित अपेक्षाओं को स्पष्ट करने के लिए समाज अपने सदस्यों को सम्पादित करने के लिए अनेक भमिकाएँ निर्धारित करती हैं। प्रत्येक एक निश्चित प्रकार के अपेक्षित व्यवहार से जुड़ा हुआ है। एक सैन्य अधिकारी की भूमिका निष्ठा, कृतसंकल्पता, साहस तथा संसाधन सम्पन्नता की माँग करती है। समाज प्रत्येक व्यक्ति, युवा या वृद्ध, उस कौशल, व्यवहार तथा मूल्यों को विकसित करने की ओर अभिमुख होता है। जो उसकी भूमिका की माँग होती है। जो उससे अपेक्षा की जाती है यदि उससे अत्यधिक अपेक्षा की जाती है तो उसके सामाजिक समबन्धों को कहठनाई में पड़ने की सम्भावना रहती है।

न्यू गयाना के चम्बली आदिवासी (1949) में मार्गरेट मीड़स द्वारा किये गये अध्ययन में भलीभांति सोदाहरण दिया गया है कि किस सीमा तक भूमिका की अपेक्षाएँ व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है। इनमें स्त्रियों से जीविकोपार्जन, व्यापारिक लेन–देन पणय निवेदन में पहल करने की अपेक्षा की जाती है। दूसरी तरफ पुरुषों से अपेक्षा की जाती है कि नखरेबाज, मनोहर, गपशप करने में प्रवीण हों तथा अच्छे गृह निर्माणकर्ता हो तथा नृत्य करने एवं नाटक में उन की रुच हो। (चाम्बृलियों में स्त्रियों तथा पुरूषों में स्थापित भूमिका स्पष्ट रूप से व्यक्तित्व विकास को उस मार्ग की ओर ले जाती है जो हमारी संस्कृति से अधिक भिन्न है।)

iii) अन्तरपरसपर सम्बन्ध

मनुष्य एक सामजिक प्रणी है और अधिकतर उसके व्यक्तित्व का विकास दूसरे व्यक्तियों के साथ उसके समबन्धों को प्रतिबिम्बित होता है। अनेक समाजों में एक निश्चित प्रकार के अन्तरपरस्पर सम्बन्ध दूसरे पर आधिपत्य रख सकते हैं, उदाहरणार्थ प्रतिमान संघर्ष या सहयोग, शत्रुता या मित्रता हेतु हो सकते हैं। फिर भी सामान्यतः अन्तरपरस्पर समबन्ध बजाय विकास की समानता की अपेक्षा वैयक्तिकता को अधिक योगदान देते हैं, क्योंकि हममें से किसी भी दो का न तो पूर्णरूप से वही परिचय है और न तो उन लोगों से जिन्हें हम सामान्यतः मानते हैं, उनसे समान सम्बन्ध है। यहाँ तक कि माता–पिता अपने प्रत्येक बच्चों से किसी न किसी रूप में भिन्न प्रकार से सम्बन्ध रखते हैं। प्रेम एवं घृणा, मित्रता एवं अविश्वास के अनुभव, आपस में बंटे हुए अनुभव तथा गलत फहतियाँ जो दूसरे लोगों के साथ हमारे सम्बन्धों का चरित्र चित्रण करते हैं, प्रत्येक दशा में एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

यद्यपि हमारे जीवनक्रम में अनेक प्रकार के अन्तरपरस्पर सम्बन्ध होते हैं, वे जो हमारे विकास को स्वरूप प्रदान करने में सर्वाधिक प्रभाव डालते हैं, जैसेस हमारे माता–पिता तथा अपने समकक्ष समूह । इसके अतिरिक्त अन्तरपरस्पर सम्बन्धों के अन्य बहुत से दूसरे प्रकार यथा भाई–बहन, पितामह, शिक्षक, पड़ोसी, व्यक्तित्व को स्वरूप प्रदान करने में सार्थक भूमिका निभा सकते हैं, यहाँ तक कि किसी के साथ आकस्मिक भोंट हमारे जीवन की दिशा परिवर्तित कर सकती है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) व्यक्तित्व विकास में भौतिक परिवेश की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) वे कौन से प्रमुख साधन हैं जिनके द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण पर व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव डालता है।

.....

.....

.....

.....

2.4 व्यक्तित्व विकास में सीखने की भूमिका

सीखने के विभिन्न स्वरूपों में, विशेष रूप से अनुकूलन, अनुसरण तथा दूसरे के निर्देशन तथा मार्गदर्शन में शिक्षण प्रशिक्षण की व्यक्तित्व के स्वरूप के विकास में प्रमुख भूमिका रहती है।

स्वयं के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्त, स्थितियों, लोगों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने की विशिष्ट विधि, समाज द्वारा अनुमोदित भूमिकाओं की मान्यताओं के प्रति मनोवृत्ति, एवं सामाजिक समायोजन की विभिन्न, पुनरावृत्ति द्वारा सीखी जाती है और इनके द्वारा मिलने वाले संतोष द्वारा प्रबलित की जाती हैं, तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना में "विशेषताओं" को संस्थापित करती हैं।

घर के भीतर एवं बाह्य सामाजिक दबाव यह निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार की विशेषताएँ रचना में समानिष्ट (सम्मिलित) की जाएगी। उदाहरण के लिए यदि एक बालक को आक्रामक बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, क्योंकि आक्रामकता पुरुषों के लिए उचित यौन सम्बन्धी विशेषता मानी जाती है, तो वह लोगों तथा वस्तुओं के प्रति आक्रामक रूप में प्रतिक्रिया करना सीखेगा। यदि दूसरी तरफ आक्रामकता को सामाजिक अस्वीकति प्राप्त होती है या संतोष नहीं अर्जित करती हैं, तो व्यक्ति समायोजन की अन्य दूसरी विधियों का प्रयोग करेगा जब तक कि वह किसी ऐसी विधि से प्राप्त नहीं होती जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो। वह इसकी तब तक पुनरावृत्ति करेगा जब तक कि यह उसके व्यवहार का सामान्य स्वरूप नहीं ले लेता।

दूसरी तरफ यह हमें यह बताता है कि अस्वस्थ स्व धरणाएँ तथा सामाजिक रूप से अस्वीकार प्रतिमान परिवर्तित तथा संशोधित किए जा सकते हैं जैसा कि सभी प्रकार के सीखने में जितना ही शेघ्र परिवर्तन तथा संशोधन का प्रयास किया जाता है, उतना ही इसमें सुगमता होती है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

क) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) उन कारणों को बताइये जिनके द्वारा आप यह कह सकते हैं कि व्यक्तित्व विकास में सीखने की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

.....

.....

.....

.....

2.5 सामाजीकरण की प्रक्रिया तथा व्यक्तित्व विकास में समाजीकरण की भूमिका

मानव व्यक्तित्व में समाजीकरण की भूमिका को अन्ना इसाबेला के केस का उदाहरण देकर दर्शाया जा सकता है। एक अवैध संतान को अकेले एकान्त में सीढ़ीयों के ऊपर एक समरे में रख दिया गया था। लगभग 6 वर्ष की आयु में जब से उस कमरे से हटाया जी गया तो अन्ना बात नहीं कर सकती थी, चल नहीं सकती थी या कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकती थी जो बुद्धिमता को प्रदर्शित करता। वह भावविहीन थी तथा प्रत्येक चीज के प्रति प्रदर्शित करता है कि सामाजीकरण के अभाव में विशुद्ध रूप से जैवकीय संसाधन इतना दुर्बल है कि यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में योगदान नहीं दे सकता। अभिव्यक्तिशील सम्पर्क सामाजीकरण अन्यन्तर (हृदय) है।

इसावले साढ़े छ वर्ष की आयु में पायी गयी थी। अन्ना की तरह वह भी एक अवैध सन्तान थी और इस कारण से एकाकीपन में रखी गयी थी। जब उसे पाया गया तब वह किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से सम्पूर्ण रूप से अनभिज्ञ थी। इसका व्यवहार छरू माह के बच्चे के

व्यवहार से तुलना योग्य था। कालान्तर मे उसे बोलना सिखने का प्रयास किया गया। प्रारम्भ में वह निराश प्रतीत हुई परन्तु अन्त में उसने प्रतिक्रिया व्यक्त की और अन्ततोगत्वा साढत्रे आठ वर्ष की आयु होने पर वह विकास के सामान्य स्तर पर पहुंची।

इसाबेल का केस यह दर्शाता है कि 6 (छः) वर्ष तक एकाकीपन के साथ ही भाषण (बोलना) के किसी भी प्रकार को अर्जित करने में असफलता इस उत्तरवर्ती अर्जन को प्रतिबन्धित नहीं करती। परन्तु यह कहना कठिन है कि वह कौन सी अधिकतम आयु होगी जिस पर एक व्यक्ति एकाकीपन में रहकर भी सम्पूर्ण सांस्कृतिक अर्जन की क्षमता सुरक्षित रख सकता है। फिर भी ये दोनों ही केस, व्यक्तित्व में समाजीकरण की भूमिका को दर्शाते हैं।

समाजीकरण का अर्थ

मानव समाज एक वाह्य परिघटना नहीं है अपितु यह मात्र इसके सदस्यों के मस्तिष्क में विद्यमान रहता है। मानव शिशु संसार में पशु समान आवश्यकताओं के साथ एक जैविक जीवन के रूप में आता है। शैनेशैन वह एक सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होता है और वह सामाजिक तरीके से व्यवहार करना, अनुभूति करना सीखता है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया के बिना समाज स्वयं को बनाएँ नहीं रख सकता, न तो संस्कृति विद्यमान रह सकती है और न ही एक व्यक्ति बन सकता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया समाजीकरण कहलाती है। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही एक व्यक्ति एक सामाजिक व्यक्ति बनता और व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।

समाजीकरण में वयक्ति को सामाजिक तथा सांस्कृतिक संसार में प्रवेश कराना सम्मिलित है, उसे समाज तथा इस विभिन्न समूहों में एक विशिष्ट सदस्य बनाना तथा उसे समाज के प्रतिमानों तथा मूल्यों को स्वीकार करने हेतु प्रेरित करना है। समाजीकरण सीखने का एक विषय है जो सीखने वाले को सामाजिक भूमिकाओं के समपादन हेतु समर्थ बनाता है।

समाजीकरण के अभिकरण

समाजीकरण एक शिशु को समाज के एक उपयोगी सदस्य के रूप में परिवर्तित करता है और उसे सामाजिक परिपक्वता प्रदान करता है। इसलिए यह जानना बहुत महत्व रखता है कि कौन शिशु का समाजीकरण करता है। शिशु के समाजीकरण के दो साधन है। प्रथम वे लोग है जा उसके संरक्षक है। दूसरे वे लोग है जो शिशु के समान हैं। प्रथम श्रेणी में माता–पिता, शिक्षक, वयोवृद्ध लोग तथा राज्य को सम्मिलित किया जा सकता है। दूसरे में समआयु के समूह, मित्र तथा क्लब के साथियों को सम्मिलित किया जा सकता है, संक्षेप में समाजीकरण की संस्थाएँ निम्नलिखित हैं।

प्राथमिक अभिकरण

i) परिवार

माता–पिता या परिवार शिशु के समाजीकरण की प्रथम संस्था बनती है। वे शिशु से केवल घनिष्ट रूप से सम्बन्धित ही नहीं होते अपितु शारीरिक रूप से भी वे अन्य की अपेक्षा शिशु के निकट होते हैं। माता–पिता से बच्चे भाषा सीखते हैं। उन्हें सामाजिक

सदाचार की शिक्षा दी जाती है। वे अधिकार रखने वाले व्यक्तियों का सम्मान करने लगते हैं। परिवार में एक शिशु अनेक प्रकार के नागरिक गुणों को सीखता है। इसलिए परिवार सही रूप में सामाजिक गुणों का उद्‌गम (पालना) कहा जाता है। एक शिशु अपनी प्रथम शिक्षा सहयोग, सहनशीलता, आत्म त्याग, प्यार एवं अनुराग परिवार में ग्रहण करता है।

ii) आस–पड़ोस

आस–पड़ोस समाजीकरण की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था है। एक उत्तम पड़ोस एक शिशु को सकारात्मक व्यक्ति एवं जिम्मेदार के रूप में विकसित करा सता है।

iii) समआयु समूह या खेल के साथी

समआयु समूह एवं मित्र भी समाजीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था बनते हैं। शिशु तथा उसके खेल के साथियों के बीच समानता का सम्बन्ध है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, शिशु सहयोगात्मक नैतिकता एवं संस्कृति के कुछ अनौपचारिक पक्षों यथा फैशन, सनक, उन्माद, तुष्टीकरण के विभिन्न माध्यम एवं निषित ज्ञान अर्जित करना है। सामाजिक दृष्टि से इन चीजों का ज्ञान आवश्यक है।

iv) विद्यालय

विद्यालय भी समाजीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था है। विद्यालय में शिशु शिक्षा ग्रहण करता है जो विचारों एवं मनोवृत्तियों को स्वरूप प्रदान करता है। उचित या पर्याप्त शिक्षा व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनासकती है जबकि एक बुरी शिक्षा एसे एक अपराधी बना सकती है। समाजीकरण की प्रक्रिया के लए शिक्षा का अधिक महत्व है। शिक्षा की भली प्रकार नियोजित व्यवस्था सक्षम व्यक्तियों को उत्पन्न कर सकती है।

समाजीकरण की सहायक संस्थाएँ

ऊपर वर्णित समस्त संस्थाएँ समाजीकरण की प्राथमिक संस्थाएँ हैं। समाजीकरण की कुछ अन्य संस्थाएँ भी हैं जो समाजीकरण की सहायक संस्थाओं के रूप में जानी जाती हैं।

i) धर्म

धर्म समाज में एक महत्वपूर्ण कारक है। समाजों के प्रारम्भिक इतिहास में धर्म समाज को एकता के सूत्र में बांधता था। यद्यपि आधुनिक समाज में धर्म के महत्व का ह्यास हुआ है। फिर भी यह हमारे विश्वास तथा जीवन शैली को दिशा देता है। शिशु अपने माता–पिता को मन्दिर जाने और धार्मिक क्रिया करते हुए देखता है और धर्मोपदेश को सुनता हे जो उसके जीवन की धारा को निर्धारित करती है और उसके विचारों को स्वरूप प्रदान करती हैं।

ii) राज्य

राज्य सामाजीकरण की सत्तावादी संस्था है। यह लोगों के लिए कानून बनाता है और उन से अपेक्षित आचार व्यवहार की विधि निर्धारित करता है। यदि वे राज्य के कानून के अनुरूप अपने व्यवहार को अनुकूलन करने में असमर्थ हैं तो उन्हें इस असफलता के लिए दण्डित किया जा सकता है। इस प्रकार राज्य एक व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को नियंत्रित करता है।

बोध प्रश्न V

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) समाजीकरण की कौन–कौन सी संस्थाएँ व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण हैं।

.....

.....

.....

.....

2.6 आनुवंशिकता एवं पर्यावरण का तुलनात्मक महत्व

आज पर्याप्त प्रमाण है कि एक शिशु के व्यक्तित्व का स्वरूप क्या होगा यह केवल प्रशिक्षण की विधि या उस पर्यावरण, जिसमें व्यक्ति विकसित होता है पर ही निर्भर नहीं करता अपितु व्यक्ति द्वारा अपने साथ जाने वाली अनुवांशिक अन्तः शक्ति पर भी निर्भर करता है।

आनुवंशिकता एवं पर्यावरण की अन्तःक्रिया को प्रभावित करने वाली दशाएँ :

जन्म के समय एक व्यक्ति की अतःक्रिया दूसरे लोगों को प्रभावित करती है और अन्तशक्ति स्वयं भी जीवन की प्रारंम्भिक अव्यवस्थाओं से प्रभावित होती है। दूसरे महत्वपूर्ण लोगों के साथ उसके सम्बन्धों से प्रभावित होती है। इस प्रकार व्यक्तित्व के उस प्रतिमान का गठन जैसा कि पहले माना जाता था, जटिल प्रक्रिया है और अन्य बहुत से तत्व अन्तर्निहित हैं जो सत्य होते यदि नवजात शिशु "मात्र जीवनद्रव्य का आदित्य होता है।"

विकास जैविक संरचना एवं अन्य अन्तःशक्तियों का दूसरे सार्थकों के साथ अन्तःक्रिया का कार्य है। इस अन्तःक्रिया में महत्वपूर्ण व्यक्ति शिशु की व्यक्तित्व को संस्कृति द्वारा अनुमोदित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास करते है। वे किस प्रकार शिशु की मूलभूत प्रेरणाओं को संचालित करते हैं यह निर्धारित करता है कि शिशु का किस प्रकार का पर व्यक्ति होगा। माता–पिता, भाई–बहनों, समआयु के लोगों, सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों का शिशु के साथ आचार–व्यवहार क्या होगा, यह भी अन्तःक्रिया के स्वरूप को प्रभावित करता है और इस प्रकार व्यक्तित्व की संरचना को प्रभावित करता है। एक शिशु जिसने परिवार में आक्रामक होना सीखा है, वह घर के बाहर लोगों के साथ आक्रामकता की विशेषताओं को समाहित करने वाले व्यवहार को प्ररित करेगा। इसके विपरीत ऐसे परिवार में जहां आक्रमण को न्यून स्थान प्राप्त है वहाँ वह बाहरी व्यक्तियों के साथ मैत्रीपूर्ण, सहयोगात्मक अन्तःक्रिया रखेगा।

आनुवंशिकता तथा पर्यावरण का तुलनात्मक महत्व

व्यक्तित्व की संरचना के गठन में अनुवंशिकता तथा पर्यावरण के तुलनात्मक महत्व कम से कम तीन चरों–विशेष्ता जो प्रभावित होती है। विकसित होने वाली विशेषताओं को प्रभावित करने वाले पर्यावरण का स्वरूप, एवं पर्यावरण की शक्तियों का क्षेत्र एवं गहनता द्यकुछ विशेषताएँ तुलनात्मक रूप से स्थिर हैं। उनमें पर्यावरण के किसी भी प्रकार के प्रभाव के बावजूद भी कोई भी किंचित परिवर्तन नहीं होता। अन्य दूसरे अस्थिर हैं और आसानी से पर्यावरण की दशाओं से प्रभावित होते हैं।

यहाँ तक कि कुछ लोगों में वही विशेषताएँ मुख्य रूप से आनुवंशिक दशाओं के परिणाम हो सकती हैं जबकि दूसरों में यह पर्यावरण की दिशाओं की उत्पत्ति हैं। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति जन्मजात स्वभाव के कारण एकान्तवासी संकोची हो सकता है जबकि दूसरा पर्यावरण के साथ संघर्ष के कारण ऐसा हो सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुछ विशेषताओं में आनुवंशिकता से प्रशिक्षण महत्वपूर्ण होता है जबकि दूसरे में इसके विपरीत सत्य होता है। फिर भी सामान्यतः जिनता अधिक एक विशेषता संरचनात्मक वंशानुक्रम से सम्बन्ध है उतना ही कम यह पर्यावरण के प्रभाव से संशोधित की जा सकती है। उसी प्रकार पर्यावरण के प्रकार तथा उसके प्रभाव की गहनता संशोधित की जा सकती है। उसी प्रकार पर्यावरण के प्रकार तथा उसके प्रभाव की गहनता विभिन्न प्रकार की विशेषताओं में परिवर्तन की मात्रा को प्रभावित करती है।

पर्यावरण का प्रभाव दैहिक, बौद्धिक या सांवेगिक है। यह इस बात का निर्धारण करेगा कि कहां तक विभिन्न विशेषताओं को परिवर्तित कर सकती हैं। संरचनात्मक विशेषताएँ अधिक स्थायी अपेक्षाकृत उन विशेषताओं के जिनाक स्वरूप अधिक कार्यात्मक है।

आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के तुलनात्मक महत्व को जानने की उपयोगिता

आनुवंशिकता एवं पर्यावरण में से किसकी भूमिका अधिक महत्वपूण है, इस प्रश्न का उत्तर एक शब्द में नहीं दिया जा सकता। व्यक्तित्व की रचना के कुछ पक्षों के लिए आनुवंशिकता अधिक महत्वपूर्ण है और कुछ के लिए पर्यावरण। दोनों का संयुक्त प्रभाव निर्णायक है कि उनका पृथक प्रभाव।

व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक कारणों से यह अत्यधिक उपयोगी होगा कि यह निर्धारण करने के योग्य बनने के लए कि कौन सा प्रभाव अधिक प्रभावशाली होगा। इस प्रकार के ज्ञान के एक व्यावहारिक उपयोग का जर्सील्ड द्वारा दिया गया सुझाव यह है कि ष्यदि बच्चे अपने अन्तर्जात विशेषताओं के कारण अतिसंवेदनशीलता ताकी ठेस पहुंचाने, विचलित होने झुकने, या अवज्ञाकारी होने, लज्जित करने, पीड़ एवं कुंठा को अधिक या कम सहने की प्रवृत्ति में एक दूसरे से पृथक हैं तो हम यह मान्यता बना सकते हैं कि वे न्यूराटिक या स्वस्थ मस्तिष्क युक्त व्यक्ति के रूप में विकसि होने की अपनी अन्तर्जात प्रवृत्तियों में भिन्न हैं।"

व्यक्ति पर दोनों प्रकार के प्रभावों का तुलनात्मक महत्व एक बार या सदा के लिए नहीं निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि वे एक दूसरे को उनके प्रभाव में प्रबलित कर सकते हैं या उनमें संघर्ष हो सकता है। पर्यावरण का प्रभाव केवल पर्यावरण पर ही नहीं अपितु व्यक्ति के अनुवांशिक प्रतिभा पर निर्भर करता है।

बोध प्रश्न V

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

i) व्यक्तित्व विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के महत्व की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2.7 व्यक्तित्व का गठन

यह विश्वास नवीन नहीं है कि व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्माण जीवन के प्रारम्भ में होता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रायड ने प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व का स्वरूप किस प्रकार होगा, इसका निर्धारण करने के लिए जीवन की प्रारम्भिक अवस्था को महत्व दिया। उनका सिद्धान्त इस साक्ष्य पर आधारित था कि व्यक्तित्व में विध्न से पीड़ित उसके कई रोगियों के बाल्यावस्थाके अनुभव दुखद थे। फ्रायड ने अभिधारणा की कि, ये दुखद अनुभव उनके कुछ नैसर्गिक मनोवेग के कुण्ठा से आये।

बारटीमेयर ने बताया कि प्रारम्भ के प्रतिकूल अनुभव व्यक्तित्व पर गम्भीर प्रभाव डालते हैं क्योंकि व्यक्तित्व का स्वरूप उस समय पूर्ण रूप से बाद की अपेक्षा पूर्णरूप से कम संगठित होता है। इसे ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारम्भिक अनुभवों से होने वाली हानि आवश्यक रूप से स्थायी नहीं होती।

रचना पहले प्रारम्भ क्यों शुरू होती है

व्यक्तित्व के स्वरूप की रचना जन्म के पश्चात के प्रारम्भिक काल में प्रारम्भ होती है क्योंकि सीखने की क्षमता प्रारम्भ में विकसित होती है और शिशु के प्रथम जन्मदिन तक पहुँचने के पूर्व ही क्रियाशील होने के लिए तैयार हो जाती है। जीवन के प्रारम्भिक काल में क्या होत है, विकास की ओर अग्रसर शिशु किस प्रकार के सम्पर्क में है। वे उससे क्या अपेक्षा करते हैं तथा किस प्रकार वे अपनी आपेक्षाओं को प्रवर्तित करने का प्रयास करते हैं– सभी विकासोन्मुक व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं और निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार के व्यक्तित्व के रूप में वह विकसित होगा।

व्यक्तिगत के स्वरूप की रचना किस प्रकार होती है

सांस्कृतिक समूह, अनुमोदित मौलिक व्यक्तित्व के स्वरूप को निर्धारित करता है और समूह के प्रत्येक सदस्य से इसके अनुसार चलने की अपेक्षा करता है। व्यक्ति जिस संस्कृति में रहता है इसके साथ अन्तःक्रिया द्वारा व्यक्तित्व को एक स्वरूप आकार प्रदान किया जाता है तथा उसमें परिवर्तन लाया जाता है। उस संस्कृति में जिसमें मूल्य तुलनात्मक रूप से स्थिर है अनुमोदित बुनियादी व्यक्त्वि का स्वरूप उसी प्रकार अपेक्षाकृत स्थिर है। जहां मूल्यों में प्रायः मूलतः परिवर्तन होते हैं वहां भी अनुमोदित मूल व्यक्तित्व में परिवर्तन होते हैं। वास्तव में इसका अर्थ सम्पूर्ण स्वरूप में परिवर्तन नहीं है अपितु इसके कुछ पक्षों में।

गठन के स्रोत

व्यक्तित्व के गठन में अभिवृत्तियां, अनुभूतियां, तथा युवाओं के व्यवहार प्रतिमान को सर्वप्रथम परिवार में तथा कालान्तर में उन्हें विद्यालय में, सम आयु के समूहों में और विस्तृत रूप से समुदाय में गठन होता है।

परिवार, शिशु सर्वप्रथम सामाजिक पर्यावरण तथा सामाजिक समूह के रूप में जिससे उसका बहुधा तथा घनिष्टतम सम्बन्ध रहता है, व्यक्तित्व गठन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था है। घर, विद्यालय, शिक्षक, समआयु समूह, माध्यम, धर्म, पेशा आदि कुछ अन्य महत्वपूर्ण साधन है।

गठन की तकनीक

संस्कृति द्वारा स्वीकृत आदर्शों के साथ चलने के लिए व्यक्तित्व के स्वरूप के बठन के लिए सीखने की दो प्रमुख विधियाँ हैः प्रथम दूसरों द्वारा व्यवहार के मार्गदर्शन एवं नियंत्रण के

माध्यम से सीखना, एवं दूसरा, दूसरों के विश्वास, आचार व्यवहार के स्वरूप से सीखना। प्रथम सीखने की वाह्य निर्देशित विधि है और सामान्यतः "शिशु प्रशिक्षण" के रूप में उल्लेखित है। दूसरा, स्व अनुकर्णित अथवा आन्तरिक निर्देशित है और "तादात्यीकरण के नाम से जानी जाती है।

यह कहना असम्भव है कि इनमें से कौन व्यक्तित्व के स्वरूप के गठन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सीखने की दोनों प्रकार की विधियों की तुलनात्मक प्रभावोत्पादकता एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, एक आयु वर्ग से दूसरी आयु में भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि कहा गया है कोई भी दो व्यक्ति एक समान प्रतिक्रिया नहीं करते।

बोध प्रश्न VI

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) व्यक्तित्व गठन के क्या–क्या स्रोत है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) गठन की महत्वपूर्ण विधियां क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2.8 सारांश

इस इकाई में हमने व्यक्तित्व के निर्धारकों की व्याख्या की है। व्यक्ति गठन से सम्बन्धित संक्षिप्त विचार भी दिए गए हैं।

व्यक्तित्व का विकास अनेक कारकों पर निर्भर करता है। आनुवंशिकता, पर्यावरण, सीखना तथा समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। जननिक आधार की आनुवंशिकता व्यक्तित्व का एक बहुत ही महत्वपूर्ण निर्धारक है क्योंकि व्यक्तित्व का प्रमुख कच्चामाल शारीरिक संरचना, बुद्धि एवं स्वभाव अत्यधिक सीमा तक व्यक्ति की आनुवंशिक प्रतिभा पर निर्भर करते हैं। पर्यावरण भी व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। भौतिक, पर्यावरण, जलवायु एवं भू–भाग उन महत्वपूर्ण कारकों में से है जो किसी के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं।

व्यक्तित्व विकास में सीखने की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह दो चरणों से महत्वपूर्ण है। प्रथम, यह हमें बताती है कि नियंत्रण यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि एक व्यक्ति इस प्रकार से व्यक्तित्व के स्वरूप को विकसित करेगा जो उसे एक अच्छे व्यक्तित्व तथा सामाजिक समायोजन की ओर ले जा सके। दूसरे हमें बताता है कि अस्वस्थ समाज द्वारा अस्वीकृत समायोजन के स्वरूप को परिवर्तित तथा संशोधित किया जा सकता है।

व्यक्तित्व विकास के लिए एक व्यक्ति का समाजीकरण बहुत महत्वपूर्ण है। समाजीकरण की संस्थाएँ जैसे कि परिवार, पड़ोस, समआयु समूह, विद्यालय, धर्म, राज्य एवं अन्य एक व्यक्ति के स्वस्थ व्यक्तित्व विकास में सहायक होती हैं।

प्रश्न यह कि व्यक्तित्व विकास में कौन सी संस्था, आनुवंशिकता या पर्यावरण, अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, आज तक अतुन्तरित रहा है। इस बात के प्रमाण है कि व्यक्तित्व के स्वरूप के कुछ क्षेत्र में आनुवंशिकता अधिक महत्वपूर्ण है– जबकि पर्यावरण दूसरे में अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में दोनों संयुक्त रूप में व्यक्तित्व की संरचना करते हैं।

अध्ययन इस बात को दर्शातें हैं कि व्यक्ति का गठन जीवन के प्रारम्भ में शुरू होता है और यह कि प्रारम्भिक वर्ष संकटपूर्ण विवेचनात्मक होते हैं। एक बार जब आधारशिला रख दी जाती है तो पर्यावरण के प्रभाव का महत्व प्रत्येक बीतने वाले वर्ष के साथ कम हो जाता है। व्यक्तित्व गठन के पर्यावरणीय स्रोत में परिवार, विद्यालय, समआयु के साथी, समूह, जनसमूह, धर्म एवं पेशा आते हैं। गठन के इन स्रोतों का तुलनात्मक महत्व एक समूह से दूसरे समूह तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति से में भिन्न होता है।

व्यक्तित्व गठन के लिए दो प्रकार का सीखना उत्तरदायी है। प्रथम वाह्य निर्देशित सीखना है और इसे शिशु के पालन पोषण के नाम से जाना जाता हैं दूसरा आन्तरिक निर्देशित है और इसे तादात्मीकरण कहते हैं।

2.9 शब्दावली

आनुवंशिकता : व्यक्ति जब जीवन का प्रारम्भ करता है तो उसमें वे सभी तत्व जो विद्यमान रहते हैं वे आनुवंशिकता द्वारा आछदित रहते हैं।

समाजीकरण : समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा नवजात व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी के रूप में रूपान्तरित किया जाता है और लोग समाज में अपने उसके अनुकूल बनाते है।

भौतिक परिवेश : :भौतिक परिवेश से आशय व्यक्ति के घेरने वाले प्राकृतिक संसार से है यथा जलवायु, भूभाग, खाद्यान्न की आपूर्ति, रोग, कीटाणु एवं अन्य।

समाजिक सांस्कृतिक : सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण से हमारा तात्पर्य

पर्यावरण : व्यक्तियों के संसार, प्रथाएँ, मूल्य तथा मानव निर्मित वस्तुओं से है।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आलपोर्ट, गार्डन, डब्ल्यू. पैटर्न एण्ड गग्रेथ इन पर्सनाल्टी न्यूयार्क, होल्ट, रिनहार्ट एण्ड विन्सडन।

कोलमैन, पर्सनाल्टी डायनमिक्स एण्ड इफेक्टिव विहैवियर।

हाल एण्ड लिण्डजे, थ्योरीज ऑफ पर्सनाल्टी, विले ईस्टर्न।

हर्लाक, ई.बी., पर्सनाल्टी डेवलपमेंट, टाटा मैक्ग्राहिल पब्लिसिंग कम्पनी लि.।

2.11 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) व्यक्तित्व विकास के लिए आनुवंशिकता का अधिक महत्व है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा उचित सिद्ध कर सकते है। एक व्यक्ति जो निम्न स्तर की बुद्धि उत्तराधिकार में पाता है वातावरण की अनुकूल दशाओं में भी इस प्रकार व्यक्तित्व के स्वरूप को विकसित कर सकता है जो उसे एक अच्छे व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन की ओर ले जा सके अपेक्षाकृत उस व्यक्ति के जो उत्तराधिकार में अपेक्षाकृत उच्च स्तर की बौद्धिक क्षमता पाता है।

बोध प्रश्न II

1) व्यक्तित्व विकास में भौतिक पर्यावरण की भूमिका महत्वपूर्ण है। परन्तु यह उन दशाओं में अधिक महत्वपूर्ण हैं जहाँ कि प्रतिकूल दशाएँ वास्तविक रूप से शारीरिक क्षति पहुँचाती हैं, जैसे कि कुपोषण तथा रोग की स्थिति में।

2) प्रमुख स्रोत जिस के द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण एक व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अपने प्रभुत्व का प्रयोग करता है निम्नलिखित है–

   समूह की सदस्यता तथा निर्देश।

   प्रस्थिति एवं भूमिका।

   अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।

बोध प्रश्न III

1) दो कारण से सीखने में व्यक्तित्व विकास की भूमिका होती है।

   क) यह हमें बताता है कि एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के स्वरूप का विकास यह सुनिश्चित करने के लिए होगा कि वह एक वैयक्तिक तथा सामाजिक समायोजन को दिशा देगा।

   ख) यह हमें बताता है कि अस्वस्थ आत्मधारणा तथा समायोजन का अस्वीकृत सामाजिक स्वरूप को परिवर्तित तथा संशाधिक किया जा सकता है।

बोध प्रश्न IV

1) व्यक्तित्व विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं–

   परिवार

विद्यालय

शिक्षक

समआयु समूह

प्रचार माध्यम

राज्य

बोध प्रश्न V

1) व्यक्तित्व पर दोनों प्रकार के प्रभावों का तुलनात्मक महत्व एक बार सदा के लिए नहीं निर्धारित किया जा सकता क्योंकि वे अपने प्रभाव में एक दूसरे को सुदृढ़ कर सकते हैं। या उनमें संघर्ष हो सकता है। पर्यावरण का प्रभाव केवल पर्यावरण पर निर्भर करता है अपितु व्यक्ति के अनुवांशिक प्रतिभा पर भी निर्भर करता है।

बोध प्रश्न VI

1) व्यक्तित्व गठन के प्रमुख स्रोत हैं

परिवार

विद्यालय

शिक्षक

समआयु समूह

प्रचार माध्यम

धर्म

पेशा

2) गठन की दो महत्वपूर्ण विधियां निम्नलिखित हैं :

क) शिशु का प्रशिक्षण

ख) तादात्मीकरण

इकाई 3 मानव विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रसवपूर्व विकास

3.3 शैशवावस्था

3.4 बाल्यावस्था

3.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था

3.6 उत्तर बाल्यावस्था

3.7 किशोरवस्था

3.8 प्रौढ़ावस्था

3.9 मध्यावस्था

3.10 वृद्धावस्था

3.11 सारांश

3.12 शब्दावली

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य अध्ययनकर्ता को व्यक्तित्व विकास के जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया को समझने तथा विवेचित करने में सक्षम बनाना है। इस इकाइ में मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है ताकि अध्ययनकर्ता को विकास की प्रत्येक अवस्थाओं से तथा विकास के यंत्ररचना की विशेषताओं से परिचित कराया जा सके।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- सामान्य विकास प्रक्रिया की जानकारी तथा असामान्य परिस्थितियों से इसे अलग करने में सक्षम हो सकेंगे;
- प्रत्येक अवस्था की कठिनाईयों और संकटों की पहचान कर सकेंगे;
- प्रत्येक अवस्था में विकासात्मक कार्यों और मील के पत्थरों से परिचित हो सकेंगे; और
- विकास के सभी अवस्थाओं में प्रसन्नता के विभिन्न साधनों के विषय में जागरूक हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मानव विकास विशेषताओं के आधार पर विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। ये अवस्थाएँ क्रमानुसार अपने पहले एवं आगे की अवस्थाओं से जुड़ी हुई होती है। प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी अद्वितीय विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण एक अवस्था दूसरे अवस्था से भिन्न दिखायी पड़ने लगती है। ये भिन्नताएँ व्यक्तियों–व्यक्तियों में भी दिखायी पड़ती हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अलग दिखाई देता है। हममें से कुछ व्यक्तियों में विकास निर्विघ्न होता है जबकि अन्य व्यक्ति इसमें अनेक उतार–चढ़ाव का अनुभव करते हैं। यह कारक एवं तरीके जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद होते हैं, मानव व्यक्तित्व की आधारशिला तैयार करते है। जीवन यात्रा के विश्लेषण के उपयोग में आने वाले कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं से हमारा परिचित होना आवश्यक है जो निम्नलिखित है–

1) वृद्धि

वृद्धि से तात्पर्य कोशों के संख्या एवं आकार में बढ़ोतरी से है तथा यह मात्रात्मक उन्नति होती है। यह इस पर आधारित नहीं होता है कि प्राणी ने क्या सीखा है, बल्कि यह परिपक्वता पर आधारित होता है।

2) परिपक्वता

परिपक्वता से तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो प्राथमिक रूप से व्यक्ति के वंशानुक्रम से सम्बन्धित शारीरिक क्षमताओं को प्रकट करते है। परिपक्वता एक कली के खिलने एवं उसके एक फूल के मंजरी के रूप में स्थापित होने की पूर्ण क्षमता को प्रदर्शित करता है। यह किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण अथवा पर्यावरण पर निर्भर नहीं करता हैं।

3) विकास

विकास को क्रमिक, संबद्धतापूर्ण परिवर्तनों की प्रगतिशील श्रृंखला, जो परिपक्वता के लक्ष्य की ओर निर्देशित होती है, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। (हरलॉक, 1964) अर्थात विकास से तात्पर्य है गुणात्मक परिवर्तन जिसकी दिशा परिपक्वता की ओर होती है। विकास को परिपक्वता एवं अधिगम के गुणज या कार्य के रूप में भी समझा जा सकता है। विकास एक अवलोकनात्मक नमूने का अनुसरण करता है जिसका पूर्वकथन किया जा सकता है। शोधकर्ताओं ने विकास के दो सिद्धांतों की पहचान की है, वे हैं:

सेफालो कूडल सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार विकास शरीर में सिर से प्रारम्भ होकर पैर तक पहुँचता है। संरचना एवं कार्य में होने वाल परिवर्तनों को पहले सिर में, फिर धड़ में तथा सबसे अन्त में पैरों में देखा जा सकता है।

प्राक्सिमोडिस्टल सिद्धान्तः

इस सिद्धान्त के अनुसार विकास नजदीक शरीर से दूर की ओर होता है। शरीर में इस प्रकार का विकास शरीर के मध्य बिन्दु से प्रारम्भ होकर किनारों पर पहुँचता है।

विकास के स्तर

अत्यधिक व्यापक रूप में विकास के स्तरों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है –

अ) गर्भकालीन विकास एवं

ब) जन्म के बाद विकास

गर्भकालीन विकास में वे सभी परिवर्तन सम्मिलित होते हैं जो माँ के गर्भ में होते हैं। इसलिए इसे 'गर्भाशय के भीतर विकास' भी कहा जाता है जहाँ गर्भाशय पर्यावरण होता है। दूसरी ओर जन्म के पश्चात् का विकास जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक के सभी स्तरों का विकास है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) वृद्धि, विकास एवं परिपक्वता किस प्रकार भिन्न हैं? किसी एक लक्षण का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सेफालो कूडल एवं प्राक्सिमोंडिस्टल नियमों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.2 प्रसवपूर्व विकास

व्यक्ति का विकास उसके जन्म से बहुत पहले ही प्रारम्भ हो जाता है तथा जन्म से पूर्व की विकासात्मक अवस्था को प्रसवपूर्ण अवस्था कहा जाता हैं पिता का शुक्राण ु माता के डिम्ब से मिलता है। शुक्राणु वक्र नलिका द्वारा गर्भाशय की डिम्बवाहिनी में प्रवेश करते हैं जहाँ उनका संसर्ग डिम्ब से होता हैं इस प्रक्रिया को निशेचन या गर्भाधान की प्रक्रिया कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप एक कोश का निर्माण होता है जिसे युग्मजन कहते हैं। और यहीं से जीवन का प्रारम्भ होता है। एक कोशिका जिसे साधारण आँखों से देखा भी नहीं जा सकता वही आगे चलकर एक पूर्ण व्यक्ति बन जाता है। क्या आपको नहीं लगता कि यह आश्चर्यजनकय उलझन भरा तथा प्रकृति का एक खुबसूरत चमत्कार है?

प्रसवपूर्ण विकास की अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म तक होती है। इस अवस्था को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :

1) युग्मनज अवस्था : निषेचन से दो सप्ताह तक

2) भ्रूणावस्था : 2 सप्ताह से 2 महीने तक

3) गर्भस्थ शिशु की अवस्था : तीसरे सप्ताह से प्रारम्भ होकर जन्म तक।

युग्मनज अवधि

डिम्ब गर्भित होने के बाद भी कुछ समय तक डिम्ब नली में रहता है फिर वह गर्भाशय में पहुँच जाता हैं चार पाँच दिनों तक डिम्ब गर्भाशय की दीवारों के सहारे उन्मुक्त होकर तैरता रहता है। निषेचन के लगभग 10 वें दिन युग्मनज गर्भाशय की दीवार को तोड़कर गर्भाशय में पहुँच जाता है और उससे स्वयं को सम्बद्ध कर लेता है, इस प्रक्रिया को गर्भाधारण कहते है। गर्भाशय की दीवार इसको ढक लेती है। तीव्र कोशिका विभाजन प्रारम्भ हो जाता है तथा एककोशीय युग्मनज बारम्बार विभाजन के बाद एक गेंद के आकार में परिवर्तित हो जाता है जिसमें कोशिकाओं की दो परतें होती हैं।

भ्रूण की अवधि

इस अवस्था का प्रसार 2 सप्ताह के बाद में प्रारम्भ होकर 2 महीने तक होता है। इस अवधि में भ्रूण एक सूक्ष्म मानव की तरह होता हैं कोशिका विभाजन प्रारम्भ हो जाता है जिसमें एक कोशिका से विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वाह्य अंग जैसे सिर, मुख, हाथ, अंगुलियाँ, पैर आदि स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है तथा आंतरिक अंग जैसे– हृदय, फेफड़े एवं मस्तिष्क निर्मित हो जाते हैं। भ्रूण गर्भाशय के अन्दर चक्कर काटता रहता है तथा हृदय स्पन्दन को भी सुना जा सकता है। गर्भाधान के पश्चात् के पहले बारह सप्ताह बहुत महत्वपूर्ण होते है क्योंकि इसी अवधि में महत्वपूर्ण अंगों का निर्माण होता है।

भ्रूण की अवधि का तीसरा स्तर

इस अवस्था का प्रसार तीसरे माह से प्रारम्भ से लेकर जन्म तक होता हैं वृद्धि के साथ शरीर के अनुपात में भी बढ़ोतरी होती जाती है। इस अवस्था में भ्रूण के स्पन्दन का आभास होने लगता है। सभी आन्तरिक अंगों का निर्माण पूरा हो जाता है तथा 5 वें महीने तक वे अपने वास्तविक अनुपात ग्रहण कर लेते हैं। 2–4 महीने के बीच तंत्रिकातंत्र का विकास होता है। 9 महीने या 270 दिन पूरा हो जाने पर भ्रूण जन्म के लिए तैयार हो जाता है।

प्रसवपूर्ण की अवधि में प्रभावित करने वाले कारक

प्रसवपूर्व की अवधि में विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक हैं। इन कारकों को एक साथ टिराटोजीन्स कहते है।

1) माता का पोषाहार

वृद्धि के दौरान भ्रूण को पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है, जो उसे माता के शरीर से प्राप्त होता है। अतः माता को मिलने वाला आहार सन्तुलित होना चाहिए। इस अवस्था में माता को केवल अकेले कार्बोहाइड्रेट की ही नहीं बल्कि विटामिन एवं खनिज (जैसे– कैल्सियम, फास्फेट, आयरन) जल, प्रोटीन, वसा आदि की भी आवश्यकता होती है। अतः इसकी देखरेख होनी चाहिए। इस अवस्था में माता एवं गर्भस्थ शिशु हेतु दूध, अण्डे, मीट या मछली के साथ–साथ हरी सब्जियाँ, हरे साग, मौसमी फल, दालें आदि भी उचित पोषाहार हेतु आवश्यक है।

2) माता की आयु

21 से 29 वर्ष के बीच की आयु माता द्वारा बच्चे को जन्म देने की आदर्श आयु होती है। इस अवधि से कम आयु की माँ बच्चे को जन्म देने के लिए शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूप से अपरिपक्व होती है तथा शिशु को मृत्यु का भी खतरा अधिक रहता है। 30 वर्ष से अधिक आयु की माता के होने पर बच्चे में मानसिक मंदता तथा अन्य आनुवंशिक असामान्यता की संभावना बहुत अधिक होती है।

3) माता के द्वारा विश्राम तथा व्यायाम

गर्भावस्था में इन दोनों की अनिवार्यता होती है। यदि माँ अधिक थकी हुई होगी तथा क्षमता से अधिक कार्य करती है तो बच्चे में रोश या चिड़चिड़ापन हो जाता है तथा बच्चे के निष्क्रिय अवस्था में जन्म लेने की संभावना रहती है। इसी प्रकार इस अवस्था में माता को पर्याप्त व्यायाम भी करना चाहिए।

4) रक्त समूह

इसमें से अधिकांश व्यक्तियों का रक्त समूह धनात्मक होता है जबकि कुछ व्यक्तियों का रक्त समूह गुणात्मक भी होता हैं यदि माता का रक्त समूह '–' हो तथा भ्रूण का रक्त समूह '+' हो तो एक विषय परिस्थिति होती हैं माता को इस सम्बन्ध में जागरूक होना चाहिए तथा यदि बच्चे के जन्म के समय सावधानियाँ नहीं बरती गई तो अनेक विषमताएँ जैसे पीलिया हो सकता है तथा इसका परिणाम शिशु की मूत्यु भी हो सकती है।

5) व्यसन

यदि माता गर्भावस्था में शराब, सिगरेट या मादक द्रव्यों का सेवन करती है तो उसका अपशिष्ट पदार्थ भ्रूण तक भी चला जाता है। इससे बच्चे में चिड़चिड़ापन, जन्म के समय कम वनज होना या समय से पूर्व ही बच्चों का जन्म जैसे खतरे की संभावना रहती है। इसके अतिरिक्त बच्चे के निश्क्रिय अवस्था में जन्म की भी सम्भावना हो जाती है।

6) माता की बीमारी

गर्भावस्था में माँ की बीमारी भ्रूण को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से गर्भावस्था के प्रारम्भिक संक्रमणकालीन अवस्था में। जर्मन खसरा के कारण शिशु में बधिरता, मानसिक मन्दता या हृदय रोग भी हो सकता है। एड्स, आत्शक या अन्य यौन संक्रमित रोगों के कारण गर्भपात भी हो सकता है।

7) माता पर दवाब

गर्भावस्था में यदि माँ को दुश्चिन्ता, तनाव एवं सांवेगिक समस्या होती है तो भ्रूण को पर्याप्त मात्रा में रक्त की आपूर्ति नहीं हो पाती है तथा यह विचलित हो जाता है। इससे भ्रूण के विकास में बाधा पड़ती है। इसका परिणाम अपरिपक्व शिशु का जन्म, बच्चे का चिड़चिड़ा होना तथा बच्चे का निष्क्रिय अवस्था में जन्म लेना भी हो सकता है।

प्रसवपूर्व विकास बच्चे के जन्म की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के साथ ही समाप्त हो जाती है। बच्चे का जन्म सामान्य एवं स्वाभाविक या सहायता के द्वारा हो सकता है। भ्रूण के समक्ष कठिनाइयों या विषमताएँ आ सकती हैं, विशेष रूप से आक्सीजन या रक्त की कमी।

विषमताओं की स्थिति में सहायता की आवश्यकता होती है, जिसमें यंत्र की सहायता से या आपेरशन द्वारा बच्चे का जन्म होता है। इस दशाओं में नवजात शिशु के स्वास्थ्य की देखभाल को सुनिश्चित करना चाहिए।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) संक्षेप में गर्भावस्था विकास के तीन चरणों को चर्चित करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) गर्भावस्था के दौरान माता के किन प्रमुख कारकों का निरीक्षण किया जाना चाहिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 शैशवावस्था

स्थिर प्रसवपूर्व विकास का अन्त जन्म के समय होता है तथा यह एक आघात होता है। अब भ्रूण को एक कठोर भिन्न पर्यावरण प्राप्त होता है तथा भविष्य में विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार से समायोजन स्थापिता करता है। साधारण नवजात शिशु जन्म के समय रोता है जो इस बात का सूचक है कि नवजात शिशु अब स्वयं सांस ले सकता है। शिशु का फेफड़ा जो निष्क्रिय था वह भर जाता है तथा बच्चे को रुलता है। यदि जन्म के समय बच्चे को किसी प्रकार की देरी हुई तो इसका तात्पर्य है कि शिशु सांस नहीं ले रहा है। इस विलम्ब के कारण यदि मस्तिष्क को आक्सीजन आपूर्ति प्रभावित हुई हो तो शिशु मानसिक मन्दित हो सकता है या उसकी मृत्यु भी हो सकती है। नवजात शिशु के वजन को भी लिख लेना चाहिए। जन्म के समय औसत वनज लगभग 2.5 किग्रा0 होना चाहिए। जन्म के समय इससे कम वजन सामान्य से कम कहा जाता है। इसी प्रकार नवजात शिशु को जीवन का सामना करने तथा सामान्य होने में बहुत संघर्ष करना पड़ता है।

इस अवस्था में गर्भाशय के बाहर नये वातावरण से समायोजन स्थापित करना ही नवजात शिशु के जीवन का प्रमुख लक्ष्य या केन्द्र होता है। वातावरण के तापमान के साथ समायोजन, स्वतंत्र रूप से साँस लेना, स्तनपान करना तथा दूध की बूंट लेना, शरीर के अपव्यय आदि का त्याग आदि ऐसे क्षेत्र है जिनमें नवजात शिशु को प्रवीण होने की आवश्यकता होती है। नवजात शिशु के सोने–नहाने का भी एक चक होता है। इसमें जागने एवं क्रिया की अवधि लगभग 50–60 मिनट होती है। इसके पश्चात् नवजात 2 से 4 घंटे तक की नींद लेता है।

शैशव की विशेषताएँ

शैशव सभी विकासात्मक अवस्थाओं में सबसे छोटी अवस्था है। चूंकि इस अवस्था में पर्यावरणीय परिवर्तन अत्याधिक कठोर होते हैं, अतः उसमें शिशु को आमूल समायोजन करने की आवश्यकता होती है। शैशवावस्था में शिशु के वनज में हल्की सी गिरावट आती है। जिसमें विकास या पठार या स्थिरता के रूप में लिया जा सकता है। शैशवावस्था में शिशु विभिन्न संकटो या खतरों का सामना करता है। ये संकट शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनो प्रकार के होते हैं। शिशु के लिए नवीन पर्यावरणीय परिस्थितियों जैसे– सांस लेने, पाचक किया तथा रक्तसंचार सम्बन्धी कार्यो के साथ स्वयं को समायोजित करना एक कठिन कार्य होता है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) जन्म के समय बच्चे का रोना क्यों महत्वपूर्ण है, इसकी व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) नवजात शिशु किस प्रकार जन्म के बाद के वातावरण से समायोजन करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 बाल्यावस्था

बचपनावस्था शैशवावस्था के बाद की अवस्था होती है जो जन्म के बाद 2 सप्ताह की समाप्ति से लेकर 2 वर्ष तक होती हैं बाल्यावस्था की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1) बाल्यावस्था के दौरान विकास सम्पूर्ण जीवन काल के विकास हेतु आधार होता है।

2) बाल्यावस्था में तीव्र शारीरिक एवं बौद्धिक विकास होता है। जिसका प्रमाण लम्बाई, वनज तथा शारीरिक अनुपात में होने वाली वृद्धि है।

3) बाल्यावस्था में आत्मनिर्भरता एवं स्वकेन्द्रितता भी परिलक्षित होती है।

4) बाल्यावस्था में शिशु में समाजीकरण प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि शिशु में परिवार के समूचे अंग बनने की इच्छा दिखायी देती है तथा वह माँ की स्थानापन्न तथा अन्य लोगों के साथ भी अपने सम्बन्धों का विस्तार करता है।

5) बाल्यावस्था में शिशु में यौन भूमिकाओं में विभेद भी प्रारम्भ हो जाता है। बालक एवं बालिकाओं को उनके लिंग के आधार पर वस्त्र पहनाए जाते हैं तथा उनमें साथ उसी अनुरूप व्यवहार भी किया जाता है। शिशु के यौन के अनुरूप सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक वस्त्र, खेलों, व्यवहार व यहाँ तक कि अन्तक्रिया भी धीरे–धीरे शिशुओं के व्यवहार में आने लगती है।

6) इस अवस्था में शिशु के समक्ष शारीरिक या मनोवैज्ञानिक, किसी भी प्रकार का संकट हो सकता है। बीमारी, दुर्घटना आदि ऐसे शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आघात है जो शिशु के सकारात्मक विकास में हस्तक्षेप कर सकते हैं।

बाल्यावस्था में यह अपेक्षा की जाती है कि शिशु दो वर्ष की अवस्था तक चलना सीख लेगा, वह कुछ ठोस आहार लेने लगेगा, मल त्याग पर आंशिक नियंत्रण कर लेगा, भाषा को ग्रहण करने और व्यक्त करने की आधारभत बातें सीख लेगा तथा माता–पिता एवं अन्य व्यक्तियों के साथ सांवेगिकता स्थापित कर लेगा।

शारीरिक–विकास

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की गति बहुत तीव्र होती है। शिशु के लम्बाइ और वनज में वृद्धि होती है। चार माह में शिशु का भार जन्म के समय से दो गुना तथा एक वर्ष के अन्त तक तीन गुना हो जाता है। औसत रूप से चार माह के शिशु की लम्बाई 23 से 24 इंच तथा एक वर्ष के शिशु की लम्बाई 28–30 इंच, दो वर्ष तक शिशु की लम्बाई 32–34 इंच तक हो जाती है। लगभग दो माह की आयु में शिशु अन्य लोगों के चेहरों को पहचानकर प्रतिक्रिया स्वरूप मुस्कुराता है, यह सामाजिक मुस्कराहट शिशु विकास में पहला मील का पत्थर होता है। दो महीने में ही शिशु करवट से पीठ के बल लुढ़कने योग्य हो जाता है। चार महीने में पीठ के बल सोया हुआ शिशु करवट लेने लगता और छः महीने की आयु में वह पूर्ण रूप से लुढ़कने लगता है। लगभग आठवें महीने में शिशु पीठ सीधी करके बिना किसी सहारे के बैठने लगता है। लगभग पांचवे महीने में शिशु किसी वस्तु को पकड़ने के लिए हाथ फैलाते हैं किन्तु इस आयु में बच्चे भुजा को सीधी नहीं रख पाते हैं। 9वें महीने तक शिशु अपनी अंगुलियों का उपयोग चिमटे की तरह किसी वस्तु को पकड़ने में कर सकता है।

शिशु बैठे–बैठे झटके के साथ चलने की क्रिया लगभग 6 महीने में तथा घिसटने और रेंगने की क्रिया लगभग 8वें महीने में करने लगता है। चारों हाथ–पैर के बल चलने की क्रिया तथा किसी वस्तु के सहारे खड़े होने की क्रिया 10वें महीने तक होने लगती है। वह 11वें महीने के अन्त तक देर तक किसी वस्तु के सहारे तथा 12वें महीने तक देर तक बिना सहारे के खड़े होने की क्रिया भी सीखा जाता है। इसके साथ ही शिशु प्रारम्भ में किसी सहारे तथा बाद में बिना सहारे के लगभग 14वें महीने तक चलने लगता है। यह मील का पत्थर, गति को प्रदर्शित करता है तथा उसे क्रियात्मक विकास भी कहते है। बचपनावस्था के प्रारम्भ में शिशु के क्रियात्मक कौशलों में समन्वय नहीं होता है किन्तु बाद में जब इनमें समन्वय हो जाता तो ये शिशु तथा उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

भाषा–विकास

जैसे–जैसे शिशु का विकास होता है, संसार के अन्य लोगों के साथ भाषा के रूप में एक महत्वपूर्ण सेतु का निर्माण होता है, जो संचार में सहायता करता है। इसके दो पक्ष होते हैं– पहला ग्रहणशील वाणी जो दूसरों द्वारा संचारित बातों को समझने हेतु होती है एवं दूसरा अभिव्यक्त वाणी जो व्यक्ति को स्वयं समझने में सहायक होती है। सबसे पहले शिशु

बलबलाना या विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालना प्रारम्भ करता है। इसके पश्चात् वह एकाक्षरी शब्दों (मा, मा, दा, दा, ना, ना आदि) के स्तर में प्रवेश करता है जो दो अक्षरीय शब्दों की अवस्था में जाने हेतु मार्ग प्रशस्त करते हैं। दो वर्ष की आयु पूरी होने तक शिशु ऐसे वाक्यों का प्रयोग करने लगता है जो दो अक्षरीय शब्दों से मिलकर बने होते हैं तथा उसमें कोई व्याकरण नहीं होता है।

सांवेगिक विकास

बाल्यावस्था के संवेग जैसे– हर्ष, स्नेह, जिज्ञासा, भय एवं क्रोध अक्सर विस्फोट रूप से अभिव्यक्त होते हैं तथा वह किसी उत्प्रेरक के अनुपातक में नहीं होते हैं। ये बहुत थोडे समय के लिए होते हैं। ये संवेग बाद के वर्षों में स्थापित होते हैं।

सामाजिक मुस्कुराहट के प्रारम्भ से ही शिशु सामाजिक पर्यावरण के प्रति प्रत्युत्तर करना सीख जाता है तथा वह भविष्य के वर्षों के अतिमूल्यवान सामाजिक कौशलों हेतु आधार होते हैं।

क्रीड़ा विकास

क्रीड़ा गतिविधियों का वर्गीकरण बालक के द्वारा खेले जाने वाले खेल की विषयवस्तु के आधार पर किया जा सकता है। विषयवस्तु के आधार पर खेल गतिविधियों से तात्पर्य है सुख प्राप्ति हेतु क्रीड़ा, कौशल क्रीड़ा, नाटक सम्बन्धी क्रीड़ा, धार्मिक कृत्य सम्बन्धी एवं प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ा। क्रीड़ा का दूसरा वर्गीकरण खेल के सामाजिक विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है जो इस पर निर्भर है कि बालक किसके साथ खेल रहा है तथा उनके सम्बन्ध का स्वरूप क्या है? इसके अन्तर्गत वयस्कों के साथ क्रीड़ा, एकान्त क्रीड़ा, समानान्तर क्रीड़ा, सहायक क्रीड़ा तथा सहकारी क्रीड़ा विभिन्न प्रकार की होती हैं।

व्यक्तित्व विकास

व्यक्ति का व्यक्तित्व अब आकार लेना प्रारम्भ कर देता है। व्यक्तित्व का कोर अर्थात् आत्म सम्प्रत्यय निर्मित हो जाता है। व्यक्तित्व के अन्य लक्षण मजबूत होंगे या कमजोर, पर्यावरण के साथ उसके अतक्रिया पर निर्भर होता है जिसे मात्रात्मक परिवर्तन कहते हैं। इनकी जड़ बाल्यावस्था में देखी जा सकती है।

बाल्यावस्था के संकट

बाल्यावस्था में बहुत से संकट होते हैं जिनपर शिशु को विजय प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। शारीरिक संकट में शिशु की मृत्यु भी हो सकती हैं। जिनका कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों, दुर्घटनाएँ या कुपोषण हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक संकट में क्रियात्मक या भाषा सम्बन्धी विकास में विलम्ब एवं उससे होने वाली हानियाँ सम्मिलित हैं। विकास में विलम्ब से सामाजिक सम्बन्ध में बाधा आती है तथा इसी तारतम्य में यह सांवेगिक विकास को भी प्रभावित करता है।

सामाजिक संकटों में सामाजिकता के आधिक्य के अवसरों एवं अनुभवों में कमी होना होता है। व्यक्तित्व विकास में संकट उत्पन्न होता है क्योंकि बच्चा आत्म सम्प्रत्यय का निर्माण इस आधार पर करता है कि उसके जीवन में महत्वपूर्ण व्यक्ति उसके विषय में क्या सोचते हैं। माता–पिता एवं अन्य व्यक्तियों का प्रतिकूल मनोवृति जो क्रोध, नकारात्मकता या प्रतिगमनात्मक व्यवहार के रूप में प्रतिबिम्बित होती है विकासशील व्यक्तित्व के क्षति का कारण हो सकता है।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) बचपनावस्था की प्रमुख विशेषताओं को चर्चित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) विकासात्मक कार्य क्यों महत्वपूर्ण होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था

बाल्यावस्था जिसकी अवधि 2 से 12 वर्ष तक होती है उसे सामान्यता प्रारम्भिक एवं उत्तर अवस्था में विभाजित किया जाता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि 2 वर्ष की आयु पूरा होने से लेकर 6 वर्ष तक होती है। इस भाग में बालक द्वारा सीखे गए कौशलों, भाषा विकास, क्रीड़ा विकास एवं व्यक्तित्व विकास को संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। इसके अलावा प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकास के विभिन्न क्षेत्रों के संकटों पर भी चर्चा की गई है। बाल्यावस्था में माता–पिता की स्वीकृति से उत्पन्न प्रसन्नता तथा स्वीकृति से उत्पन्न प्रसन्नता तथा स्वीकृति के तरीकों को भी प्रस्तुत किया गया है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था को पूर्ण विद्यालयी अवस्था भी कहा जाता है। छोटा बालक पर्यावरण के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आतुर रहता है। वह पर्यावरण के विषय में अन्वेषण करने का प्रयास करता है इसीलिए इस अवस्था को अन्वेशणात्मक अवस्था कहते हैं। प्रत्येक स्थितियाँ और वस्तु बालक के लिए ऐसे कौतुहल उत्पन्न करते हैं कि वह उनके विषय में क्या, क्यों एवं कैसे आदि प्रश्न करते रहते हैं, इसी कारण इस अवस्था को श्प्रश्नवाचक अवस्थाश का भी नाम दिया जाता है। बालक सामान्यतया अपने आस–पास के प्रौढ़ व्यक्तियों का अनुकरण या नकल करने की कोशिश करते हैं इसलिए इस अवस्था को 'अनुकरण की अवस्था' भी कहते है। उनके खेल की गतिविधियों में बहुत अधिक सृजनात्मकता एवं अनुकरण देखने को मिलता है इसलिए इस अवस्था को एक अन्य नाम 'सृजनात्मक आयु' भी दिया जाता है।

शारीरिक विकास

बाल्यावस्था में तीव्र शारीरिक विकास की तुलना में इस अवस्था में धीमी गति से शारीरिक विकास होता है। शारीरिक अनुपात में संतुलन बढ़ जाता है तथा सिर के भारी आकार में भी कमी आती है। इस अवस्था में प्रतिवर्ष बालक में लगभग 2 किग्रा. भार में वृद्धि होती है तथा ऊँचाई में औसतन प्रति वर्ष 3 इंच की वृद्धि होती है। दूध के दाँत टूट जाते हैं तथा बाल्यावस्था के गोल मटोल स्वरूप के स्थान पर बालक दुबला पतला दिखने लगता है। इन परिवर्तनों के कारण बालक आकर्षक नहीं लगता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के कौशल

छोटा बालक बहुत से कौशलों को सीखता है तथा उसमें प्रवीण होता है क्योंकि उसमें व्याप्त विशाल कौतूहल उसे सिखाते एवं चतुर बनाते हैं। इन बालकों में उत्तर बाल्यावस्था के बालकों की भाँति उपहास किए जाने का डर या अवरोध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त उनके शरीर में लचीलापन होता है तथा उँगलियाँ निपुण होती हैं और ये सीखने योग्य होती हैं जो कुशलताओं के अधिगम में एक महत्वपूर्ण गुण होता है। बच्चे अपने पर्यावरणीय अवसरों और पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुरूप विभिन्न प्रकार के कौशल सीखते हैं।

बाल्यावस्था में बालक हाथ से भोजन करने तथा कपड़े पहनने में दक्ष हो जाते हैं। बाल्यावस्था में बच्चे अपने से नहाना, बाल सँवारना एवं यहाँ तक कि जूते के फीते बाँधना जिसमें सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों की आवश्यकता पड़ती है भी सीख जाता है। गेंद को फेंकना तथा पकड़ना, कैंची का उपयोग, चित्रकला, रंग भरना, पेंसिल या चाक का उपयोग, रेखाचित्र बनाना आदि सभी प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि के अंग हैं।

चलने जैसे आधारभूत कौशल के दृढ़ता से स्थापित हो जाने के बाद बालक अतिरिक्त कौशलों की ओर बढ़ता है। एक पैर पर कूदना, रस्सी कूदना, कूदना, दौड़ना, सीढ़ी चढ़ना और उतरना आदि बालक द्वारा किए गए प्रगति को प्रदर्शित करते है। साइकिल चलाना आदि सभी गतिविधियों का इस अवस्था के बालकों द्वारा बहुत आनन्द लिया जाता है। हाथ के कार्य स्थापित हो जाते है तथा प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक बालक में दाएँ या बाएँ हाथ के उपयोग की प्राथमिकता स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगती है।

भाषा विकास

संचार की ग्राह्यता तथा अभिव्यक्ति दोनों में सुधार होता है तथा बचपनावस्था के बलबलाने एवं चिल्लाने (रोने) की क्रिया में बहुत कमी आती है। सामान्य भाषा विकास में महत्वपूर्ण तेजी आती है। जब बालक उचित उच्चारण सीखने लगता है, वाक्य रचना (व्याकरण दोषों के साथ) एवं शब्दकोषों का निर्माण भी करता है। इसी समय भाषा विकास की विषय वस्तु में एक मोड़ आता है। बालक केवल अपने, अपनी रूचियों एवं स्वयं की आवश्यकताओं के स्थान पर बालक लगभग 6 वर्ष की आयु में सामाजिक भाषा का उपयोग करने लगता है।

सांवेगिक विकास

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में तीव्र संवेग होते हैं जिनमें बहुधा सांवेगिक विस्फोट भी होते रहते हैं। इसमें बहुत जल्दी गुस्सा आना, तीव्र भय या इर्ष्या होते है तथा इसका कारण लम्बे समय तक चलने वाले एवं थका देने वाले खेल एवं बहुत कम भोजन करना हो सकते हैं।

क्रीड़ा

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के आरम्भ में बच्चे बहुत अधिक खिलौनों से खेलते हैं किन्तु इस अवस्था के पूरे होने तक वे धीरे–धीरे खिलौनों से खेलना बन्द कर देते हैं। खिलौनों या खेल के समानों की संख्या, नए कौशलों की सीखने के अवसर, पर्याप्त विकसित क्रियात्मक कौशल, सृजनशीलता, उच्च बुद्धिलब्धि आदि सभी कारकों का न्यूनाधिक प्रभाव खेल के पद्धति पर पड़ता है। इस अवस्था में खेल के अन्तर्गत बहुत अधिक अनुकरणशीलता तथा नाटकीय होती है। उदाहरणार्थ, एक छोटा बालक माँ, शिक्षक या अन्य की तरह व्यवहार करता है। कल्पनाशील खेलों में कभी वास्तविकता तो कभी कल्पनालोक का आनन्द बालकों द्वारा लिया जाता है।

अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध

माता–पिता के साथ सम्बन्ध

इस सम्बन्ध का अनुभव बच्चे अपने माता तथा पिता या उनके स्थानापन्न व्यक्ति के साथ करते है। माता–पिता के साथ खराब सम्बन्ध का बच्चे के उपर विध्वंशकारी प्रभाव पड़ता है क्योंकि बच्चे माता–पिता पर बहुत अधिक मात्रा में आश्रित होते हैं। इसके अतिरिक्त बालक की सुरक्षा भी माता–पिता के इर्द–गिर्द ही रहती है। इसीलिए माता–पिता के साथ खराब सम्बन्ध या उनकी अनुपस्थिति या मृत्यु बच्चे के लिए दुःखदायी होती है तथा यह व्यक्तित्व के विकास को भी प्रभावित करता हैं।

भाई–बहन के साथ सम्बन्ध

बालक जैसे–जैसे आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ता है तथा वह शिशु नहीं रहता है। भाई बहनों के साथ का झगड़ा तब शुरू होता है जब वह अपने तरीके से कार्य करना चाहता है। इसे भाई–बहनों की प्रतिद्वन्द्विता कहते है इसके बाद भी भाई–बहन अच्छे सम्बन्धों का आनन्द उठाते हैं। विशेष रूप से तब जब बड़े बच्चे छोटे बच्चों के लिए सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त एवं लैंगिक रूप से उचित व्यवहारों को अनुकरण द्वारा सीखने में उनके भूमिका–आदर्श का कार्य करते हैं।

व्यक्तित्व विकास

आत्म सम्प्रदाय की रचना जो व्यक्तित्व का एक प्रमुख अंग होता है, परिवार के अन्दर ही होती है क्योंकि बच्चे का सामाजिक संसार उसके माता–पिता, भाई –बहन तथा अन्य सम्बन्धी जो उसके साथ रह रहे हैं और वे बच्चे के विषय में जैसा सोचते हैं बच्चा उसे ही देखता है तथा अपने श्आत्मश के रूप में स्वीकार करता है। मित्र समूह का भी प्रभाव आत्म सम्प्रत्यय पर होता है जो बच्चे के प्रति उनकी मनोवृति से प्रकट होता है तथा वह बच्चे पर परिवार के प्रभाव को और मजबूत बना सकता है तथा स्थापित कर सकता है या उसका विरोध कर उसे ध्वस्त कर सकता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के संकट

पूर्व की अवस्थाओं के विपरीत इस अवस्था में शारीरिक संकटों यथा बीमारी, दुर्घटना या जटिल परिस्थितियों का शरीर के साथ–साथ मानसिक प्रतिघात भी होता है। मृत्युदर में पूर्व की अवस्थाओं की तुलना में सीधी कमी आ जाती है। छोटे बच्चे संक्रमण और बीमारियों से बहुत अधिक प्रभावित होते है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में सुधार करके बीमारियों की रोकथाम की जा सकती है। प्रतिदिन होने वाली दुर्घटनाएँ जैसे कटना, रगड़ना, गिरना या जलना आदि आमतौर पर होता रहता हैं तथा सामान्यतः यह लड़कों में लड़कियों की तुलना में अधिक पायी जाती हैं गम्भीर या लम्बी बीमारी बच्चे को प्राप्त होने वाले अवसरों

से उन्हें वंचित करते हैं या अवसरों को प्रभावित कर वह बच्चे को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते है।

एक पूर्व विद्यालयी बालक जो अक्सर नकारात्मक या दुःखदायी संवेगों जैसे–क्रोध, आदि का अनुभव करता रहता है उसमें नकारात्मक प्रवृति का विकास होने का सांवेगिक संकट

रहता है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ में ही बालक को अपने पर्यावरण में स्वयं तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों के बीच सांवेगिक जुड़ाव स्थापित करने सीखना आवश्यक होता है, जिसे 'परानुभूतिक ग्रन्थि' कहा जाता है। परानुभूतिक ग्रन्थि की स्थापना में असफल होना भी एक अन्य सांवेगिक संकट होता है। बालक को माता के साथ एक स्थायी एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध की आवश्यकता होती है, जो सम्बन्धों में विस्तारित होती है।

टनेक ऐसी परिस्थितियाँ होती है जो बालक के सामाजिक समायोजन की मात्रा को प्रभावित करती हैं। ये निम्नलिखित स्थितियों से उत्पन्न होती हैं–

क) यदि बालक का व्यवहार या भाषा लोकप्रिय नहीं होती है तो वह अकेला हो जाता है तथा उसके मित्र–समूह परिस्थितियों में सीखने का अवसर कम हो जाता है।

ख) बच्चे पर अपने लिंग के अनुरूप खेलों में भाग लेने का शक्तिशाली दबाव उसे परेशान कर देता है तथा वह तिरस्कृत हो सकता है

ग) वे छोटे बच्चे जो अपनी आयु, लिंग या जाति के कारण दुःखदायी सामाजिक परिस्थितियों का सामना करते हैं वे स्वयं के बचाव में सभी सामाजिक सम्बन्धों से दूर हो जाते हैं।

घ) वे बच्चे जो अधिकांशतः पालतू या काल्पनिक साथियों के साथ खेलते है वे प्रभावशाली प्रवृत्ति के होते हैं। इसका परिणाम सामाजिक कुसमायोजन होता है।

ड.) ऐसे बच्चे जिनके सदैव बहुत से खेल के साथी रहे हैं, वे अकेले किस प्रकार परिस्थितियों को सम्भाला जाता है नहीं सीख पाते है और इस प्रकार वे बिल्कुल अकेले हो जाते हैं।

नैतिकता का विकास

प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि में बच्चे स्वीकृत एवं अस्वीकृत व्यवहारों को सीखते हैं। अतः उन्हें उचित नैतिक विकास के लिए भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जो निम्नलिखित पर आधारित होता है

1) माता–पिता द्वारा बच्चे को निरन्तर एवं स्थिर रूप से उचित एवं अनुचित की शिक्षा अन्तर करने हेतु दी जानी चाहिए अन्यथा वह भ्रमित हो जाएगा।

2) बच्चे की किसी भी भूल को अनुमोदित करना, स्वीकृत करना या कृपापूर्वक देखना नहीं चाहिए। यह गलत व्यवहार छोड़ने के लिए प्रबलन का कार्य करता है।

3) अत्यधिक दण्ड बच्चे को विनाश की ओर ले जाते हैं। अच्छे व्यवहार के लिए प्रशंसा, पुरस्कार एवं पारितोषित और कभी–कभी एवं स्थिर दण्ड बच्चे में नैतिकता विकसित करती है।

4) बच्चे के पालन–पोषण की व्यवस्था सत्तात्मक के स्थान पर बच्चे के प्रेम एवं स्वीकृति पर आधारित होनी चाहिए।

माता–पिता को बच्चों को निरन्तर गलत से सही की ओर ले जाने वाली शिक्षा अन्तर करने हेतु देनी चाहिए। यदि माता–पिता बच्चों को किसी बात को पहले तो गलत बताते हैं और अगले दिन उसी बात को सही मानकर उस बात की अनदेखी कर देते है तो बच्चे भ्रमित हो जाते हैं। दो वयस्कों द्वारा किया गया इस प्रकार का अन्तर भी बच्चे को भ्रमित करते हैं। यदि बच्चे की गलतियों, जिसके लिए माता–पिता उसे दण्डित करते हैं को अन्य व्यक्तियों विशेष रूप से उसके मित्रों द्वारा स्वीकृति दी जाती है तथा सराहना की जाती

है तो गलत व्यवहारों के प्रति बालकों में सकारात्मक अभिवृत्ति बन जाती है। इसीलिए केवल गलत व्यवहार ही नहीं अपितु इनके प्रति अभिवृत्तियों के जाँच की भी आवश्यकता होती है।

प्रसन्नता

एक बालक जो प्रसन्न रहता है वह एक पर्याप्त समायोजित व्यक्ति के रूप में विकसित होता है। बच्चे की प्रसन्नता के लिए माता–पिता को बच्चे को स्वीकृति प्रदान करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए। उन्हें बच्चे द्वारा प्रत्यक्षीकृत स्वीकृति को सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है, जो निम्नलिखित तरीकों द्वारा किया जा सकता है–

1) माता–पिता द्वारा बच्चे को उसके रंगरूप, लिंग, उसके शक्तियों या कमियों के बिना ही स्वीकार करना चाहिए। उन्हें अपने बीच का सहर्ष स्वागत करना चाहिए तथा उन्हें बच्चे को इस बात का एहसास कराना चाहिए कि वे उसे चाहते हैं।

2) माता–पिता द्वारा बच्चे की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए। उचित भोजन एवं पोषाहार बच्चे को उनकी स्वीकृति एवं आवश्यकता अनुभव करने में सहायता प्रदान करते हैं। बच्चों को स्वच्छ रखने तथा बिजली के झटकों, आग, दुर्घटनाओं आदि खतरों से उनकी रक्षा हेतु सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करने से बालक के मस्तिष्क में स्वीकृति का संचार होता है।

3) माता–पिता को खाली समय निकालकर कुछ समय बच्चे के साथ बिताना चाहिए। बच्चों की गतिविधियों में सम्मिलित होना तथा उन्हें उपलब्ध वृद्धि एवं विकास के अवसरों में वृद्धि करना बच्चे को स्वीकृति देने के तरीके है।

4) माता–पिता को बच्चे से आँख मिलाकर बात करनी चाहिए। माता–पिता से बात करते समय बच्चे न केवल भाषा सीखते हैं बल्कि वे मानसिक रूप से सुरक्षित एवं स्वीकृति का अनुभव करते हैं।

5) बच्चे को दिया गया प्रोत्साहन विशेष रूप से जब वह क्रियात्मक एवं भाषा सम्बन्धी निपुणताएँ तेजी से सीख रहा होता है, उसे प्रसन्न रखता है तथा उसे स्वीकृति प्रदान करता है।

6) आयु के अनुसार तथा बच्चे की रूचियों के अनुरूप उत्तरदायित्वों को बच्चों को सौंपा जाना चाहिए। पौधों को सींचने या घर की सफाई करने में बच्चे की सहायता लेने से बच्चे को स्वीकृति का अनुभव होता है तथा वह परिवार के समूह के अंग होने का अनुभव करता है।

7) आलिंगन या चुम्बन, गोद में लेना, आदि स्नेह के प्रदर्शन द्वारा बच्चे में स्वीकृति के साथ–साथ जुड़ाव का अनुभव करने में सहायता देते है।

8) माता–पिता को बच्चे को गलत से सही, अस्वीकृत से स्वीकृत व्यवहार की शिक्षा अन्तर करने हेतु देने में समय लेना चाहिए। इस पूरे प्रक्रिया को बच्चे को अनुशासित

करना कहा जाता है। अनुशासन के परिप्रेक्ष्य में ही माता–पिता को बच्चे के समक्ष सही व्यवहार की व्याख्या एवं प्रदर्शन करना चाहिए। इसके साथ ही माता–पिता स्वयं दोनों के बीच तथा दो समय के व्यवहार के बीच स्थिरता होनी चाहिए। जल्दी–जल्दी दिया जाने वाला दण्ड प्रभावी भी नहीं होता है तथा वह बच्चे को सुग्राह्य भी नहीं होता है। यह अन्तिग आश्रय होना चाहिए। दण्ड की मात्रा सदैव मूल के आनुपातिक होना चाहिए। बच्चे को यह ज्ञात होना चाहिए कि उसे क्यों दण्डित किया जा रहा है।

बोध प्रश्न V

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) प्रारम्भिक बाल्यावस्था को और किन नामों से जाना जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 उत्तर बाल्यावस्था

उत्तर बाल्यावस्था की अवधि 6 वर्ष से लेकर लैंगिक परिपक्वता प्राप्त करने तक अर्थात् लगभग 12–13 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में बच्चों में चिन्हित नकारात्मकता का विकास होता है एवं स्वतंत्रता की इच्छा के कारण वे माता–पिता की आज्ञा का पालन कभी–कभी ही करते हैं। इस अवस्था में बालक विद्यालय जाने लगते हैं तथा सफल वयस्क जीवन हेतु अनिवार्य प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करता है। मित्र समूह का बहुत अधिक प्रभाव होता है और इस आयु में बच्चे मिलकर भीड़ बनाते है या दल बनाते हैं। इसी कारण इस अवस्था को 'दल अवस्था' कहा जाता है।

विकासात्मक कार्य

इस अवस्था में बालक को मित्र मण्डली द्वारा की गई स्वीकृति एक महत्वपूर्ण आयाम होता है। मित्रों के सम्बन्ध द्वारा बालक विभिन्न सामाजिक कौशलों को विकासात्मक कार्य के रूप में सीखता है तथा इसमें सफल होने पर प्रसन्नता तथा असफल रहने का कुण्ठा मिलती है।

एक बालक में इस अवस्था के पूर्ण होने पर निम्नलिखित गुण विकसित हो जाते हैं

- अपने समवयस्क साथियों के साथ रहना सीखना।
- पढ़ने, लिखने एवं अंकगणित के आधारभूत कौशलों का विकास ।
- प्रतिदिन के जीवन के लिए आवश्यक अवधारणाओं का विकास।
- चेतना का विकास, अर्थात् नैतिकता एवं मूल्यों की संवेदना।
- सामाजिक समूह एवं संस्थाओं के प्रति अभिवृत्ति का विकास।
- साधारण खेलों हेतु आवश्यक शारीरिक कौशलों को सीखना।
- एक पुरुष या स्त्री की उचित भूमिकाओं के विकास का प्रारम्भ ।

शारीरिक विकास

इस अवस्था में अपेक्षाकृत समान किन्तु धीमा शारीरिक विकास होता है। भार में वृद्धि लगभग पूरे उत्तर बाल्यावस्था में एक समान होती है तथा बालक की ऊँचाई में भी प्रतिवर्ष 2–3 इंचों की वृद्धि हो जाती है। शारीरिक अनुपातों में विस्तार होता है जिसमें लम्बे गा हाथ एवं पैरों के कारण बालक की आकृति भद्दी हो जाती है। 6वें वर्ष से दूध के दाँत गिरने शुरू होते है तथा इनका स्थान स्थायी दाँत ले लेते हैं किन्तु अक्ल दॉत अभी नहीं निकलता है।

उत्तर बाल्यावस्था के कौशल

बालकों में इस अवस्था में अनेक कौशलों का विकास होता है। ये कौशल बालक और बालिकाओं में भिन्न–भिन्न भी होते है

- भोजन करने, कपड़े पहनने, स्नान के स्वयं सहायता कौशलों में बालक लगभग प्रौढ़ों के तरह दक्ष हो जाते हैं। केवल थोड़ा सा ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता होती है।
- समाजिक कौशल जिसमें दूसरों की सहायता करना सम्मिलित है यथा घर पर सफाई आदि गतिविधियों में सहायता करना, विद्यालय में शिक्षकों की सहायता करना, खेल के समय अपने समवयस्क मित्रों के उत्तरदायित्वों में सहायता आदि, इस आयु के बच्चे की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ होती है।
- लिखना, पढ़ना, चित्र बनाना, रंगभरना, क्ले माडलिंग, पेंसिल से चित्रकारी करना जैसे विद्यालयी कौशलों में और अधिक प्रवीण होना।
- खेल संबधी कौशलों जैसे गेंद फकना एवं पकड़ना, साइकिल चलाना, स्केटिंग करना एवं तैरने का विकास होता है। लड़कियों में पेन्टिंग एवं सुई के कार्यों के बारीक क्रियात्मक कौशलों का अच्छा खासा विकास होता है जबकि लड़कों में सामान्य रूप से गेंद फेकना, फुटबाल को पैर से मारने या कूदने जैसे क्रियात्मक कौशलों का विकास होता है।

भाषा सुधार

बड़े बच्चे मित्र मण्डली के सदस्यों में स्वीकार किए जाने के एक यंत्र के रूप में भाषा के विकास के प्रति अधिक जागरूक होते है। इसीलिए भाषा में अपरिपक्वता, संचार के अस्वीकृत तरीकों जैसे– रोना एवं शारीरिक हाव–भाव को त्यागकर उसे सुधारने का चेतन प्रयास होता रहता है। व्याकरण एवं सही उच्चारण को बच्चे सीखते है। बच्चे चुटकुले सुनाने या घटनाओं को सुनाने या पहेलियाँ बुझाने में रूचि लेते हैं। माता–पिता एवं शिक्षक

भी बच्चों को प्रोत्साहित करके भाषा के सुधार में सहायता करते हैं। रेडियों एवं टेलिविजन भाषा के लिए आदर्श का कार्य करते हैं। बच्चों के शब्दकोष जैसे रोगों के नाम, गिनती, धन के सम्प्रत्यय, समय का ज्ञान आदि में सुधार परिलक्षित होता है। अक्सर समूहों द्वारा उपयोग किए गए गुप्त कोड बड़े बच्चों के संचार प्रक्रिया का अंग बन जाता है

उत्तर बाल्यावस्था में संवेग

बड़े बच्चे अपने उने सांवेगिक विस्फोटों को नियन्त्रित करना सीखते हैं, जो मित्र मण्डली द्वारा घृणा की दृष्टि से एक अपरिपक्व एवं अनुचित व्यवहार के रूप में देखा जाता है। दूसरी ओर प्रसन्न एवं सुखदायी अभिव्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से हँसने, मुस्कराने या कूदने के रूप में व्यक्त किया जाता है। वे बच्चे जिनमें अपने नकारात्मक अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति नहीं होती है वे मूडी हो सकते हैं या उदासीन हो जाते हैं। संवेगों की अभिव्यक्ति में लिंग के समुचित प्रभाव को देखा जा सकता है। लड़के क्रोधी या जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं जबकि लड़कियाँ भय, क्लेश एवं स्नेह की भावना से ओत–प्रोत रहती हैं।

सामाजिक विकास

बड़े बच्चे मित्र मण्डली में एक सदस्य के रूप में स्वीकार किए जाने की तीव्र इच्छा का प्रदर्शन करते हैं। घर पर रहना या भाई–बहनों के साथ खेलना उनके द्वारा नापसन्द किया जाता है। उनके समूह बाल अपराधी समूह न होकर क्रीड़ा समूह होते है। उनकी मुख्य गतिविधि खेलना या सामान्य बातचीत होती है। समूहों में एक विशेषता यह होती है कि अक्सर समूहों के सदस्य एक ही लिंग के होते है। वे बच्चे जो समूह के सदस्यों द्व ारा स्वीकृति प्राप्त करते है वे बेहतर सामाजिक प्रस्थिति अर्जित करते है तथा उनमें आत्म विश्वास की भावना होती है जबकि जिन्हें समूह द्वारा अस्वीकृत किया जाता है उनमें इसके विपरीत भाव दृष्टिगोचर होते है।

खेल गतिविधियाँ

बड़े बच्चों के लिए केवल खेल ही मनोरंजन का साधन नहीं होता है लेकिन यह समाजीकरण का मुख्य उपकरण होता है, जो विभिन्न सामाजिक कौशलों को सीखने का अवसर प्रदान करता है। विभिन्न खेलों या गतिविधियों जैसे सामान (सीप, टिकट एवं चित्र) इक्टठा करने का आनन्द लिया जाता है। जबकि ये गतिविधियाँ खेलों के सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति में उपयोगी, स्वीकृति एवं लोकप्रिय होती है।

समझ का विकास

बड़ा बच्चा इस स्थिति में होता है जहाँ उसका सम्प्रत्यय विशिष्ट एवं मूर्त हो जाता हैं वे संज्ञानात्मक विकास की अवस्था जिसे 'मूर्त क्रिया' भी कहा जाता है , में होते हैं। सम्प्रत्यय निर्माण, विकास एवं स्पष्टीकरण में विद्यालय एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बालक में सम्प्रत्यय के सामाजिक आयामों की समझ प्रारम्भ हो जाती हैं तथा समूहों के प्रकार, भिन्नताएँ आदि बालक द्वारा प्रत्यक्षीकृत की जाती है।

नैतिक व्यवहार

आचार संहिता एवं नैतिकता जो घर पर सीखी जाती थी अब उसका प्रसार सामाजिक समूहों तक हो जाता है। बालक मित्र समूह का अंग बनने के लिए चेतन प्रयास करता है। विशिष्ट परिस्थितियों की अपेक्षा सामान्य परिस्थितियों के आधार पर ही नैतिक आचारण विकसित होता है। पुरस्कार, दण्ड एवं नियमों का स्थिर उपयोग बालक को नैतिक व्यवहार विकसित करने में सक्षम बनाता है।

व्यक्तित्व विकास

जब बालक विद्यालय जाने लगता है तो उसका सामाजिक क्षितिज पारिवारिक सदस्यों से बाहर और अधिक व्यापक हो जाता है। अब बालक स्वयं को केवल माता–पिता की दृष्टि से ही नहीं बल्कि शिक्षकों सहपाठियों एवं मित्रों की दृष्टि से भी देखता है। अतः बालक के 'आत्म सम्प्रत्यय' जो उसके आस–पास के लोगों के आइने में देखा जाता है, में, परिवर्तन होता है। बालक के व्यक्तित्व गुणों में भी परिवर्तन दिखते हैं।

उत्तर बाल्यावस्था के संकट

बालक विभिन्न शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिकों संकटों के लेकर सशंकित होता है। इसमें बीमारी एवं दुर्घटना जैसे शारीरिक संकटों का बड़े बच्चों को सामना करना पड़ता है। उन्नत चिकित्सकीय सुविधाएं बहुत ही बीमारियों की देखभाल कर लेती हैं किन्तु बड़े बच्चों की मृत्यु का एक महत्वपूर्ण कारण दुर्घटनाएँ होती हैं। पर्याप्त स्वीकृति का अभाव भावी जीवन में व्यक्तित्व कुसमायोजन का एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

उत्तर बाल्यावस्था में प्रसन्नताएँ

बड़े बच्चे विभिन्न स्रोतों से सुख का अनुभव करते हैं। वे खेल के समय की प्रतीक्षा व्यग्रता से करते हैं। कुछ तात्कालिक कठिनाइयों के क्षणों के अतिरिक्त यदि घर का माहौल तनावमुक्त रहता है तो बालक परिवार से प्रेम करते है तथा सुख के एक अतिरिक्त साधन के रूप में परिवार से भी संतुष्टि प्राप्त करते हैं। उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक स्वीकृति सुख प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

बोध प्रश्न VI

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) उत्तर बाल्यावस्था के कौशलों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) दल टोली आयु की कुछ विशे ताओं को चिन्हित करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.7 किशोरवस्था

किशोरवस्था का शाब्दिक अर्थ 'परिपक्वता की ओर बढ़ना' होता है। यह बाल्यावस्था एवं प्रौढावस्था के मध्य की अवस्था होती है जिसमें दोनों अवस्थाओं की विशेषताएँ और गुण परिलक्षित होते है, यद्यपि कि दोनों में से किसी की पूरी विशेषताएँ नहीं देखी जाती हैं। इस अवस्था की अवधि 12–19 वर्ष होती है। यह अवस्था प्रौढ़ावस्था की तैयारी होती है। किशोरवस्था में लैंगिक परिपक्वता सहित अनेक तीव्र शारीरिक परिवर्तन होते है। इसी प्रकार मानसिक एवं सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं। किशोरवस्था व्यक्ति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इसके साथ ही, इस अवस्था में विभिन्न प्रकार की समस्याओं

का सामना करना पड़ता है। किशोर बहुत संवेदनशील होते हैं इसे समझा जाना चहिए तथा बहुत अधिक उत्तरदायित्व के साथ उसे संभालना चाहिए। किशोरवस्था के निम्नलिखित विकासात्मक कार्य होते हैं–

- अपने स्वयं के शरीर उसमें होने वाले तथा परिवर्तनों को स्वीकार करना।
- अपने समवयस्क दोनों लिंगों के साथियों के साथ नवीन एवं अधिक परिपक्व सम्बन्धों की स्थापना।
- कैरियर का चयन एवं इस हेतु प्रशिक्षण ।
- सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार की इच्छा, स्वीकृति एवं प्राप्ति ।
- स्वयं की पहचान बनाना।

शारीरिक परिवर्तन

किशोरवस्था में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यौन परिपक्वता होता है जो यौनारम्भ के दौरान होता है। इसके लिए शरीर लगभग दो वर्षों में तैयार होता है (पूर्व यौनारम्भ) इसके बाद अगले दो वर्षों में समायोजन एवं पूर्ण प्रकार्यात्कता आ जाती है (उत्तर योवनारम्भ)। ऊँचाई में परिवर्तन, भार में परिवर्तन विकास के फौव्वारे के समान होता है। यौवनारम्भ अवस्था में लड़कियों में मासिक धर्म का प्रारम्भ तथा लड़कों में वीर्यपतन प्रारम्भ हो जाता हैं। यौवनारम्भ में आन्तरिक एवं वाह्य दोनों प्रकार के परिवर्तन होते हैं। आन्तरिक रूप से इन्डोक्राइन व्यवस्था हारमोन का निर्माण करने लगती है जिससे किशोरों में प्रजनन क्षमता भी आ जाती है। इसमें किशोरियों में इस्ट्रोजन तथा प्रोस्टोजेन एवं किशोरों में एन्ड्रोजेन और टेस्टोस्ट्रीआन प्रमुख होते हैं। वाह्य शारीरिक परिवर्तनों में द्वितीयक यौन विशेषताएँ जैसे किशोरों के मुखमण्डल पर बालों का उगना (दाढ़ी और मूंछ का विकास) तथा किशोरियों के वक्षस्थल का विकास होता है। इसी प्रकार शरीर वयस्कों जैसा आकार प्राप्त कर लेता है तथा वाणी में परिवर्तन हो जाते हैं।

सांवेगिकता और सामाजिक व्यवहार

टॅनेले हॉल ने किशोरावस्था को श्तूफान एवं तनावश की अवस्था कहा था। हारमोन का विकास, विकास की तीव्रता तथा प्रजनन परिपक्वता इन सभी का केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि सांवेगिक प्रभाव भी होता है।

किशोरों की सांवेगिकता को तीव्र सांवेगिकता कहते हैं। जिसमें व्यक्ति चिड़चिड़ा, मूडी, आतर्किक या भावुक होता है। यद्यपि कि किशोरावस्था में परिपक्वता स्थापित हो जाती है क्योंकि यह अवस्था प्रौढ़ावस्था का मार्ग प्रशस्त करती है तथा व्यक्ति पर्याप्त रूप से समायोजन की कला सीखता है।

इस अवस्था में मित्र समूह का प्रभाव बढ़ जाता हैं। किशोर एवं किशोरियाँ विषमलिंगियों पर ध्यान देने लगते हैं तथा उनमें रूचि लेना प्रारम्भ कर देता हैं। मित्र बनाना, विद्यालय के नवीन सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन करना तथा कैरियर की खोज जैसे कार्य इस अवस्था में किए जाते हैं। व्यक्तिगत साज–सज्जा, संवरने तथा वस्त्रों आदि में किशोर अभूतपूर्व रूचि का प्रदर्शन करते हैं। वे विभिन्न दार्शनिक मुद्दों पर चिन्तन करते हैं तथा जीवन का उद्देश्य क्या है?, मैं कौन हूँ? जैसे प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास करते हैं। यदि स्वयं के पश्चात् की खोज में किशोर को अर्थपूर्ण उत्तर मिल जाता है किन्तु यदि उसके समक्ष पहचान का संकट उत्पन्न हो जाता है तो भावी जीवन में वह भ्रमित रहता है तथा उसमें आत्म अविश्वास पैदा हो जाता है।

नैतिक विकास

किशोरावस्था में नैतिकता का विकास हो जाना चाहिए। नैतिकता की जड़ आंतरिक नियंत्रण में होनी चाहिए न कि वाह्य अभिकरणों जैसे– भय, दण्ड एवं सामाजिक दुष्प्रभावों में, क्योंकि ये कारक किशोर को अपने विषय में निर्णय लेने सीखने से रोकते हैं।

किशोरावस्था में संकट

इस अवस्था में बीमारी की दर निम्न होती है तो दुर्घटनाओं एवं ऐसे द्वन्द्वों जो आत्महत्या तक के लिए बाध्य करते हैं की दर उच्च होती है। अक्षमताओं के कारण परिपक्वता की ओर संक्रमण न हो पाना भी एक मानसिक संकट होता है। सामाजिक मान्यता प्राप्त न होना, विशेष रूप से विषमलिंगियों से संकट का एक प्रमुख स्रोत होता है।

प्रसन्नता

किशोरों की प्रसन्नता उनके सामाजिक तथा पारिवारिक समायोजन पर आधारित होती है। कैरियर का चयन एवं प्रशिक्षण मन को प्रसन्न रखने में योगदान देता है। यदि कैरियर आकांक्षायें वास्तविक एवं अर्जित करने योग्य होती है तब यह स्थिति किशोरों को अच्छी तरह समायोजित एवं प्रसन्न रखने में सहायक होती है।

बोध प्रश्न VII

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) किशोरावस्था को एक मध्यवर्ती अवस्था क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) किशोरावस्था में 'तूफान एवं तनाव' के सम्प्रत्यय की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.8 प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था में वृद्धि पूर्ण हो जाती है तथा व्यक्ति विभिन्न उत्तरदायित्वों को ग्रहण कर लेता है। लगभग 18 वर्ष से प्रारम्भ होकर यह अवस्था मध्यावस्था तक अर्थात 45 वर्ष तक चलती है। जीवन के इस अवस्था के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित हैं–

पूर्व के सभी अवस्थाओं की भांति प्रौढ़ावस्था के भी विभिन्न विकासात्मक कार्य होते हैं। ये ही कार्य इस अवस्था की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हो जाती हैं। हम सभी को समाज द्वारा मान्यता एवं नियमित रूप से एक श्प्रस्थितिश एवं स्थिति प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ एक पुत्र या एक अधिकारी या एक कप्तान की प्रस्थिति । अपनी प्रस्थिति के अनुरूप ही व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने की आवश्यकता होती है जिसे श्भूमिकाश कहते हैं। भूमिका प्रस्थिति का एक गत्यात्मक छोर होता है। उदाहरण के लिए पुत्र को माता–पिता की देखरेख करनी चाहिए जबकि कप्तान टीम का नेतृत्व करता है। प्रौढ़ों की भूमिकाएँ इतनी महत्वपूर्ण होती है कि उन्हें 'परमावश्यक भूमिकाएँ कहा जाता है तथा प्रत्येक प्रौढ़ इन भूमिकाओं का निर्वाह करता है। इन भूमिकाओं में एक कार्यकर्ता की भूमिका, एक पतिध्पत्नी की भूमिका तथा एक माता–पिता की भूमिका भी सम्मिलित होती है।

कार्यकर्ता की भूमिका

किशोरावस्था में कैरियर चयनित करने एवं प्रशिक्षण लेने के पश्चात् वयस्क व्यक्ति का महत्वपूर्ण कार्य व्यवसाय प्राप्त कर उसमें स्थापित होना होता है। स्थापित होने के पश्चात् व्यक्ति को संतुष्टि अथवा असंतुष्टि का अनुभव होता है। कार्य संतुष्टि अथवा असंतुष्टि अनुभव हो जाता है। कार्य संतुष्टि (जिसे व्यावसायिक समायोजन भी कहते हैं) के अनुपात में ही व्यक्ति जीवन में समायोजन प्राप्त करता है। व्यावसायिक समायोजन निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है:

- व्यवसाय के चयन का कारण।
- कार्य करने की तैयारी।
- प्रशिक्षण और योग्यताएँ।
- अनुभव एवं विशेषता, कार्य निष्पादन में निपुणता।
- व्यक्तिगत रूचि।
- अभिवृत्ति के समायोजन तथा सीखने की इच्छा।
- धन।

यदि ये कारक अधिक या कम संतुलित होते है तो प्रौढ़ व्यावसायिक रूप से समायोजित होता है। केवल व्यक्ति के लिए ही नहीं बल्कि परिवार के लिए भी समायोजन आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति अगर एक श्ट्रैवलिंग एक्सीक्यूटिवश है और लम्बी यात्राओं पर घर से बाहर रहता है उसके परिवार की विशेष परिस्थितियों से समायोजन करने की क्षमता होनी चाहिए। यह पाया जाता है कि जो वित्तीय माँगों के साथ संतुलन रखता है वह वयस्क के रूप में अच्छा समायोजित रहता है।

जीवन साथी

पति/पत्नी के उत्तरदायित्वों को ग्रहण करना तथा बेहतर ढंग से उसका निर्वहन करना व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता एवं समायोजन स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। वैवाहिक समायोजन मुख्यता निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है।

- विवाह की आयु।
- विवाह का प्रकार– प्रेम विवाह या आयोजित विवाह।
- जीवन साथी के विषय में पूर्व ज्ञान या जानकारी।
- पृष्ठभूमि के समानताएँ/विभिन्नताएँ।
- रूचियों में समानता।
- वैवाहिक कार्य करने की इच्छा एवं सकारात्मक अभिवृत्ति।

एक प्रमुख कहावत है कि विवाह स्वर्ग से ही तय होते हैं लेकिन विवाहित युगल को इसे धरती पर स्वस्थ बनाने के लिए कार्य करना चाहिए। विवाह में सफलता विभिन्न पक्षों या क्षेत्रों में अर्जित की जानी चाहिए। मूल रूप से पति एवं पत्नी दोनों को विवाह से संतुष्ट होने की आवश्यकता होती है। वैवाहिक ईमानदारी एवं विश्वास विवाह की आधारशिला स्थापित करते है। दोनों जीवन साथियों के बीच संचार महत्वपूर्ण कारक होता हैं। एक दूसरे के प्रति आदरसूचक प्रेम, पति एवं पत्नी के बीच मेल–मिलाप निर्णायक होता है। इसके अतिरिक्त युगल को एक दूसरे की रूचियों, कार्य माँगों एवं व्यक्तित्व को ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए। यौन संतुष्टि एक अन्य क्षेत्र है। धन का रख–रखाव, खर्च एवं बचत, यदि परिपक्व ढंग से नहीं किया जाता है तो यह विवाह को नष्ट कर सकता है। इन क्षेत्रों में समायोजन सही अर्थों में विवाह को एक सुख का साधन बना सकता है।

माता–पिता की भूमिका

जैसे–जैसे परिवार बढ़ता है तथा उसमें बच्चे भी जुड़ जाते हैं, व्यक्ति को इस वास्तविकता का एहसास करना चाहिए कि यह एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। माता–पिता की भूमिका के साथ समायोजन विभिन्न कारकों जैसे बच्चों की आवश्यकता, बच्चों की संख्या, बच्चों के जन्म का समय, बच्चों का लिंग, बच्चों के बीच अन्तर, उन्हें सहयोग देने की क्षमता, माता–पिता द्वारा उपयोग में लायी जा रही बच्चों के पालन–पोषण की विधि, बच्चों की स्वीकृति आदि पर निर्भर करती है।

बच्चों को यदि स्नेहपूर्वक देखभाल के साथ सम्पूर्ण स्वीकृति प्रदान की जाय तो बच्चे माता–पिता के सांवेगिक हित में महतवपूर्ण योगदान दे सकते है। माता–पिता को अपनी भूमिका प्रतिबद्धता एवं सृजनात्मकता के साथ निभानी चाहिए। यदि बच्चे विद्रोही प्रवृत्ति के हों, बीमार हो या देखभाल न करने वाले हों तो माता–पिता की भूमिका बच्चों पर नियंत्रणकारी नहीं रह पाती है। वे दम्पत्ति जो स्वेच्छा से सन्तानविहीन रहते हैं, यद्यपि कि

अत्यधिक स्वतंत्रता का आनन्द उठाते हैं लेकिन वे बच्चों के स्नेह एवं साथ के खुशियों से वंचित रह जाते हैं।

बोध प्रश्न VIII

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) एक व्यस्क के परमावश्यक भूमिकाओं की संक्षेप में व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3.9 मध्यावस्था

मध्यावस्था प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था के बीच की अवस्था होती है। यह लगभग 45 वर्ष १ से प्रारम्भ होकर वृद्धावस्था के प्रारम्भ के समय समाप्त होती है। यह प्रौढ़ावस्था से

वृद्धावस्था के संक्रमण की अवधि होती है। इस अवस्था की विशेषता व्यावसायिक एवं अन्य क्षेत्रों की उपलब्धियाँ होती है। यह वह समय होता है जब जीवन का मूल्यांकन व्यक्ति अन्तदर्शन द्वारा करता है। इस अवस्था को खाली घोसले की अवधि कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में बच्चे घर छोड़कर बाहर चले जाते हैं। बहुत से अवलोकनकर्ता इसे तनाव की अवस्था कहते हैं अक्सर इसे मध्यावस्था संकट भी कहा जाता है।

मध्यावस्था वयस्क का विकासात्मक लक्ष्य कैरियर में सफलता, विवाह में अच्छा समायोजन एवं बच्चों में संतुष्टि के इर्द–गिर्द होता है। कार्य में व्यक्ति महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करता है तथा चरम का अनुभव करता है। विवाह शक्तिशाली होगा या कमजोर यह उसके आधार पर निर्भर करता हैं। माता–पिता के साथ उनके बच्चों के सम्बन्ध को एक नया आयाम प्राप्त होता है क्योंकि उनके बच्चे भी वयस्क जीवन प्रारम्भ कर रहे होते हैं।

शारीरिक परिवर्तन

अपने सक्रिय प्रजनन अवस्था के बाद पुरुष एवं महिला शारीरिक ह्रास का अनुभव करने लगते है। महिलाओं में रजोनिवृत्ति होती है, मासिक धर्म की समाप्ति हो जाने के कारण अब वह और बच्चों को जन्म देने में असमर्थ हो जाती है। महिलाओं में रजोनिवृत्ति के परिणामस्वरूप हारमोन में हास से महिलाओं में कुछ अन्य लक्षण आ जाते हैं। उदर के आस–पास भार में वृद्धि, जोड़ों का दर्द, रंग–रूप में परिवर्तन जैसे भूरेबाल, माँस पेशियों में झुकाव, दाँत एवं दृष्टि में समस्याएँ उनके जीवन की गति को धीमा कर देते हैं। पुरुष भी अब यौनिक आवश्यकताओं एवं प्रेरणा में कमी का अनुभव करते हैं और इससे वे स्वयं अपने पुरुषत्व पर प्रश्न चिह्न लगाने लगते हैं। चूंकि युवावस्था की समाप्ति हो जाती है इसलिए पति–पत्नी के बीच सम्बन्ध पर पुनः दृष्टिपात करना अनिवार्य हो जाता है।

सांवेगिक परिवर्तन

हारमोनो में कमी से उत्पन्न कठारे शारीरिक परिवर्तनों के कारण अनेक सांवेगिक उतार एवं चढ़ाव होते हैं। मूडीपन एवं अकेलापन मध्यावस्था वयस्क को प्रभावित करते हैं। कम होते कार्य, घटता आकर्षण एवं नकारात्मक भावनाएँ तनाव जिनकी देखभाल नहीं हो पाते, वे संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं। अर्थपूर्ण कार्य, रूचियों एवं सम्बन्धों में सांवेगिक स्थिरता अर्जित की जा सकती है। धीरे–धीरे लोग धर्म एवं ति, शक्ति एवं अर्थ के लिए भगवान की ओर मुड़ जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन

मध्यावस्था में सामाजिक गतिविधियाँ एवं उत्तरदायित्वों का महत्व बढ़ जाता है। बच्चे और उनका परिवार उनके संतुष्टि का साधन होते हैं। मित्र एवं बचपन के मित्र समूह के सदस्य व्यक्ति की बहुत महत्वपूर्ण सहायता करते हैं क्योंकि इससे व्यक्ति अकेलेपन का अनुभव नहीं करता है। इस अवस्था में जीवन यात्रा को उसके सभी मोड़ एवं चक्करों के साथ स्वीकार करने से प्रसन्नता आती है। कैरियर लक्ष्यों की स्थापना एवं प्राप्ति, पारिवारिक घनिष्ठता का नवीनीकरण एवं सामाजिक योगदानों का विकास एवं अनुभव व्यक्ति के मूल्यों में वृद्धि प्रदान करता है।

बोध प्रश्न IX

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) निम्नलिखित के अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए।

क) मध्यावस्था संकट।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) खाली घोंसला लक्षण।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.10 वृद्धावस्था

यह सत्य है कि एक 45 वर्ष का व्यक्ति एक अत्यधिक वृद्ध व्यक्ति की तरह अनुभव कर सकता है, जबकि 85 वर्ष का दूसरा व्यक्ति एक सक्रिय एवं अच्छे स्वास्थ्य का आनन्द ले सकता है। फिर भी वृद्धावस्था अमर जिसे जीवन की संध्या भी कहा जाता है लगभग 65 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है। वृद्ध व्यक्तियों को वरिष्ठ नागरिक भी कहा जाता है। वृद्धावस्था शारीरिक शक्ति एवं सामाजिक सहभागिता में अवनति की अवधि होती है। इस अवस्था का जीवन के अन्य अवस्थाओं की भांति स्वागत नहीं किया जाता है। वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन अक्सर खराब होता है। वृद्धावस्था की समस्याओं में अक्षमता, बीमारी, पराश्रितता एवं मृत्यु होती है।

शारीरिक परिवर्तन

जैसे–जैसे शक्ति का क्षय होने लगता है शरीर के विभिन्न अंगों एवं अंग व्यवस्था में धीमापन आ जाता है। मधुमेह, हृदय रोग, अस्थि रोग एवं इस प्रकार के अन्य रोग इस अवस्था में आमतौर पर होते हैं। चलने, देखने, सुनने आदि में अक्षमता व्यक्ति को विभिन्न तरीकों से सीमित कर देते हैं। ये अक्षमताएँ व्यक्ति को दूसरों पर आश्रित बना देती है।

मानसिक परिवर्तन

एक वृद्ध अक्सर अकेलेपन का अनुभव करता है। बीमारियाँ और असमर्थताएँ व्यक्ति के अन्दर एक अपर्याप्तता एवं पराश्रितता उत्पन्न कर देते हैं जो वृद्ध व्यक्ति को खराब सोचने पर मजबूर कर देता है। ये स्थितियाँ व्यक्ति को अविश्वासी तथा क्रोधी बना देती है। पति/पत्नी की मृत्यु को व्यक्ति हानि मानता है। याद्दाश्त कम हो जाने से वृद्ध व्यक्तियों के समक्ष और अधिक कठिनाईयाँ आ जाती हैं। मृत्यु का भय इस अवस्था का सबसे प्रभावी संवेग होता है। दुर्बलता एवं दूसरों पर बोझ की चिन्ता वृद्धों में आम होती है।

सामाजिक परिवर्तन

बहुधा वृद्ध व्यक्ति अपने कार्य से अवकाश प्राप्त कर लेते है। उनके व्यस्त जीवन अचानक एक ठहराव आ जाता है। पुनः रोजगार के अवसर बहुत उज्जवल नहीं होते हैं। अतः वृद्ध व्यक्ति के पास बहुत थोड़ा सा कार्य तथा बहुत अधिक समय होता है और उसकी गतिशीलता घट जाती है जो उसे बेहद कुण्डित करती है। सम्पूर्ण जीवन शैली को पुनः निर्धारण एवं पुनःनिर्माण के साथ अर्थपूर्ण गतिविधियाँ भी आवश्यक हो जाती हैं। विभिन्न कारणों से मित्र समूह के सदस्य भी पहुँच से बाहर होते है। एक विधवा या विधुर की सामाजिक प्रस्थिति कभी भी आनन्ददायक नहीं होती है। छोटी–छोटी चीजों, पैसों, एवं आश्रम हेतु दूसरों पर आश्रितता वृद्ध व्यक्तियों के सामाजिक जीवन की कठोरता के साथ संकुचित कर देती है। एक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों को स्वयं निभाने की आवश्यकता होती है, उनके लिए यह एक मील का पत्थर होता है। सामाजिक दायरे के अन्य व्यक्तियों के स्थान पर स्वयं का व्यक्तिगत जीवन एवं अस्तित्व की रक्षा ही इस अवस्था का विकासात्मक कार्य हो जाता है।

वृद्धावस्था में प्रसन्नता या खुशी अपने बच्चों और उनके कल्याण के इर्द–गिर्द ही होती है। साधारण घटनाएँ एवं स्मृतियाँ, प्यार एवं लगाव वृद्ध व्यक्ति को संतुष्टि की भावना प्रदान करते है।

बोध प्रश्न X

टिप्पणी :क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) अक्षमता, बीमारी, परनिर्भरता मृत्यु और वृद्धावस्था व्यक्ति को किस प्रकार प्रभावित करती है? प्रदर्शित करें?

.....

.....

.....

.....

3.11 सारांश

इस इकाई में मानव विकास की अवस्थाओं का जन्म पूर्व अवस्था, शिशु अवस्था, बाल्यावस्था, प्रारम्भिक एवं उत्तर बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावरथा तथा वृद्धावस्था का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं, मील के पत्थरों, शारीरिक एवं मनोसामाजिक विकास की समीक्षा की गई है। प्रसन्नता के स्रोतों का भी जिक्र किया गया है।

3.12 शब्दावली

वृद्धि : वृद्धि से तात्पर्य आकार, कोशिकाओं की संख्या तथा मात्रा में उन्नति से होता है जो परिपक्वता पर आधारित होता है।

परिपक्वता : परिपक्वता से तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो प्राथमिक रूप से व्यक्ति के क्षमताओं तथा आनुवांशिक रूप से प्राप्त शारीरिक क्षमताओं के फैलाव को प्रकट करता है।

विकास : विकास परिवर्तनों की एक प्रगतिशील श्रृंखला है जो प्रकृति से क्रमिक सम्बद्ध, पूर्वकथन करने योग्य, आगे बढ़ने वाला, लक्ष्योन्मुख तथा गुणात्मक होती है।

विकासात्मक कार्य : विकासात्मक कार्य समाज द्वारा समाज में रह रहे व्यक्तियों में की गई मांग होती है। इसकी पूर्णता में सफलता से प्रसन्नता तथा असफलता से कण्ठा होती है। ये सभी मील के पत्थर होते हैं जो व्यक्ति द्वारा विकास की यात्रा के दौरान पार किये जाते हैं।

प्रसवपूर्व विकास वह विकास जो बच्चे के जन्म के पूर्व माँ के गर्भाशय में होता है। यद्यपि कि आनुवंशिक कारक गर्भावस्था में अधिक प्रभावी होता हैं लेकिन पर्यावरणीय कारकों की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

गर्भधारण : यह दो कोशों का योग होता है। पिता का शुक्राणु तथा माता का डिम्ब मिलकर एक एक कोश का निर्माण होता हैं जिसे युग्मनज कहते हैं। व्यक्ति के जीवन का प्रारम्भ इसी एककोश से होता है जिसे युग्मनज कहते है।

सम समूह : ससे तात्पर्य व्यक्ति के विद्यालय एवं पड़ोस के समवयस्क साथियों से है जिनके साथ उसकी घनिष्ठ अन्तक्रिया होती है। जब यह सम्बन्ध सकारात्मक होते हैं तो ये व्यक्तित्व का निर्मित एवं विकसित करते हैं जबकि मित्र समूह का नकारात्मक प्रभाव अक्सर विचलित व्यवहार एवं कुसमायोजन को उत्पन्न करता है।

अभिभावकत्व : माता–पिता या उनके स्थानापन्न व्यक्तियों द्वारा पूरे किये जा रहे विभिन्न उत्तरदायित्वों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। बालक को स्वीकृति प्रदान करने से उसमें बेहतर अभिभावकत्व कौशल विकसित होते हैं।

यौवनावस्था : यह लैंगिक परिपक्वता प्राप्ति की आयु होती है। जब व्यक्ति प्रजननर करने योग्य हो जाता है। इसकी अवधि 12 से 14 वर्ष तक होती है तथा यह वृद्धि की तीव्रता से सम्बन्धित होता है।

आत्म सम्प्रत्यय : व्यक्ति स्वयं क्या है, इस विषय में जो भी सोचना है, अनुभव करता है या कल्पना करता है वही आत्म सम्प्रत्यय होता है तथा यह अक्सर उसके चारों तरफ रह रहे लोगों के व्यवहार तथा टिप्पणियों से परिवर्तित होता है। अतः आत्म सम्प्रत्यय का विकास व्यक्ति के आस पास के लोगों द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। इसके व्यक्तित्व के केन्द्रीय तत्व के रूप में महत्व दिया जाता है

एक प्रौढ़ की परमावश्यक भूमिकाएँ : व्यक्ति को अपने सामाजिक स्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार के भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों की पूर्ति करना आवश्यक होता है। प्रौढ़ावस्था में ये भूमिकाएँ बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। इसीलिए इसे प्रौढ़ की परमावश्यक भूमिकाएँ कहा जाता है।

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एलिजाबेथ, बी. हरलॉक (1980), डेवलपमेंटल साइकोलाजी, 5वाँ संस्करण, टाटा–मैकग्रा हिल, नई दिल्ली

एलिजाबेथ, बी. हरलॉक (1964), चाइल्ड डेवलपमेंट, 6वाँ संस्करण, टाटा–मैकग्रा हिल, न्यूयार्क

एल. जोसेफ स्टोन एण्ड जोसेफ चर्च, (1973), चाइल्डहुड एण्ड एडोलसेन्स 3रा संस्करण, रैण्डम हाउस, न्यूयार्क

बी. कुप्पुस्वामी (1974), टेक्सट बुक ऑफ चाइल्ड, बीहेवियर एण्ड डेवलपमेंट, कोनार्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली

जार्ज जी थाम्पसन (1981), चाइल्ड साइकोलॉजी, सुजीत पब्लिकेशनस, नई दिल्ली

हैवीघर्स्ट, आर. जे. (1953), ह्युमेन डेवलपमेंट एण्ड ऐजुकेशन, लांगमैनस, न्यूयार्क

3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) क) वृद्धि कोशिकाओं की संख्या में उन्नति होती है। यह मात्रात्मक होती है।

ख) परिपक्वता उचित समय पर आनुवंशिकता से प्राप्त क्षमताओं, जो अधिगम पर आधारित नहीं हैं को फैलाना है।

ग) विकास एक गुणात्मक परिवर्तन है जो अक्सर अधिगम एवं पर्यावरण के साथ अन्तक्रिया पर आधारित होता है।

2) क) सेफालो पूँछ सम्बन्धी सिद्धान्त एक विकास का नियम है जहाँ विकास सिर से प्रारम्भ होकर आखिरी भाग तक जाता है।

ख) प्राक्सिमो डिस्टल सिद्धान्त कहता है कि विकास शरीर के एक केन्द्रीय अक्ष या मध्य से प्रारम्भ होकर चरम तक होता है।

बोध प्रश्न II

1) गर्भावस्था विकास की तीन अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं:

युग्मनज अवस्था, भ्रूणावस्था तथा गर्भावस्था शिशु की अवस्था।

युग्मनज अवस्था में गर्भावस्था होता है तथा तीव्र कोशिका विभाजन भी होता है। भ्रणावस्था जो गर्भधारण के बाद 2 माह तक चलती है, सभी आंतरिक अंग जैसे मस्तिष्क, हृदय आदि का निर्माण हो जाता है तथा यह अति महत्व की अवस्था होती है। हृदय की धड़कन को सुना जा सकता है। गर्भस्थ शिशु की अवस्था के प्रारम्भ के साथ बच्चा पर्याप्त विकसित हो चुका होता है एवं उसके सभी वाह्य एवं आंतरिक अंग पर्याप्त विकसित हो गये होते हैं।

2) गर्भावस्था में माता का पोषाहार संतुलित होना चाहिए। उसकी नींद, विश्राम तथा व्यायाम की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

संक्रमण जैसे– रूबेला, गरमी (सिफलिस) बच्चे के विकास में हस्तक्षेप कर सकता है। अतः उससे सावधान रहना चाहिए। यदि उसका रक्त समूह गुणात्मक होता है तथा उसके बच्चे का धनात्मक होता है तो उसे जागरूक रहना चाहिए तथा जन्म के तुरन्त बाद बच्चे हेतु चिकित्सकीय देखभाल के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे दसरे महीने के अन्त तक अपना एक्स–रे नहीं करवाना चाहिए। दवाएँ शराब तथा तम्बाकू बच्चे को गम्भीर नुकसान पहुँचा सकते है। इसलिए उसे इससे बचना चाहिए। उसे 3 महीने में कम से कम एक बार चिकित्सक से अवश्य परामर्श लेना चाहिए।

बोध प्रश्न III

1) जन्म के समय बच्चे का रोना महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह बालक के जीवित होने का प्रारम्भिक चिह्न होता है। वह स्वतंत्र रूप से सांस लेने में सक्षम है, इसका भी प्रारम्भिक सूचक होता है। जन्म के बाद बच्चे के रोने में देर का तात्पर्य है कि नवजात शिशु को आक्सीजन नहीं प्राप्त हो रही है और इसलिए तुरन्त देखभाल नहीं की गई तो मस्तिक कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो सकती हैं।

2) नवजात शिशु को जन्म के पश्चात् के वातावरण से समायोजन की आवश्यकता होती है। उसे भोजन, श्वसन तथा स्वयं के अवशिष्ट पदार्थों के निष्कासन की आवश्यकता होती है। गर्भाशय के विपरीत कमरे का तापमान शरीर के तापमान के समान नहीं होता है और बच्चे इसके साथ समायोजन करना होता है। नवजात शिशु को सोने–जागने चक्र के साथ भी समायोजन करना पड़ता हैं नवजात शिशु को संक्रमण का बहुत अधिक जोखिम रहता है तथा नवजात शिशु को इन सभी समस्याओं को विकास के क्रम में दूर करना होता है।

बोध प्रश्न IV

1) बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ है

बाल्यावस्था एक नींव रखने की अवधि होती है।

तीव्र वृद्धि एवं परिवर्तन बाल्यावस्था की निशानी है। बच्चा कम होती आश्रितता का प्रदर्शन करता है।

व्यक्तिवादिता एवं सृजनात्मकता में उन्नति पायी जाती है।

बाल्यावस्था में समाजीकरण तथा लिंग आधारित भूमिका प्रकार का प्रारम्भ होता है। बाल्यावस्था एक ध्यान आकर्षित करने वाली अवधि होती है। खेल की गतिविधि तथा भाषा मौलिक अवस्था के अन्त तक जाती हैं।

2) विकासात्मक कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे अपेक्षाएँ एवं माँगे जो समाज द्वारा व्यक्ति से होती हैं, ही विकासात्मक कार्य होते है। समाज द्वारा एक मानक निर्धारित होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके अनुरूप ही कार्य करना चाहिए। जब ये मानक प्राप्त कर लिए जाते हैं तब व्यक्ति प्रसन्न रहता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो भावी अवस्थाओं में उसे कुंठा एवं कठिनाइयाँ होती है।

बोध प्रश्न V

1) प्रारम्भिक बाल्यावस्था का अन्य रूप में कहा जा सकता है –

प्रश्नवाचक आयु, पूर्व विद्यालयी आयु, दुःखदायी आयु, अन्वेषण करने की आयु तथा अनुकरणशील आयु।

2) प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक एक सामान्य बालक चल सकता है, ठोस आहार ले सकता है तथा उसके शारीरिक क्रियाकलापों में तर्कपूर्ण स्थायित्व आ जाता है। भाषा को समझने एवं बोलने के लिए एक उपयोगी शब्दकोष की रचना हो जाती है।

बोध प्रश्न VI

1) उत्तर बाल्यावस्था के कौशल निम्नलिखित है :

स्वयं सहायता कौशल, सामाजिक कौशल, विद्यालयी कौशल तथा क्रीडा कौशल। बड़ा बालक स्वयं सहायता कौशलों (खाना, वस्त्रधारण, आदि) को अंगीक त करता है जो अब द्वितीय स्वभाव बन जाता है। सामाजिक कौशलों जैसे घर, विद्यालय एवं खेलों में दूसरों की सहायता करना, उत्तरदायित्वों का बँटवारा आदि को भी देखा जा सकता है। लिखने, पढ़ने, अंकगणित, चित्रकारी, पेन्टिग आदि सभी विद्यालयी कौशल पर्याप्त विकसित हो जाते हैं। क्रीडा सम्बन्धी कौशल जैसे गेंद फेंकना एवं पकड़ना, साइकिल चलाना आदि सीखे जा रहे होते हैं। बालिकाओं में पेन्टिग, सुई के कार्य आदि ऐसे क्रियात्मक कौशल के क्षेत्र हैं जहाँ प्रवीणता अर्जित की जाती है। लड़कों में सामान्यतः गेंद पीछे की ओर फेंकना, उसे पैर से मारना, आदि क्रियात्मक गतिविधियों का बेहतर विकास हो जाता है।

2) दल (टोली) आयु : इस आयु समूह के बच्चे छोटे समूह का निर्माण करते हैं जिसे टोली या दल कहा जाता है। ये क्रीडा समूह होते हैं न कि अपराधी समूह। टोली समूह में नियमानुसार या तो लड़के होते हैं या लड़कियाँ । उनके बीच विभाजन रेखा बनी रहती है। टोली के सदस्यों द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना प्रत्येक बालक का सर्वोच्च मूल्य होता है। टोली के भीतर सांकेतिक भाषा, चुटकलों तथा पहेलियों का आनन्द लिया जाता है।

बोध प्रश्न VII

1) किशोरवस्था बाल्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के मध्य की आयु होती है, इसलिए यह मध्य की आयु होती है। इस अवस्था में हम किशोर में बालकों के गुणों के साथ–साथ प्रौढ़ो के लक्षण भी देख सकते हैं। किशोर स्वयं ऐसी अवधि से गुजर रहे होते है जिसमें उनकी स्थिति श्न यहाँ न ही वहाँ की हो जाती है तथा यह उसके अव्यवस्था में और वृद्धि कर देता है। बाल्यावस्था के व्यवहारों को छोड़कर तथा इस अवस्था के कार्यों में दक्षता प्राप्त करने से किशोर को प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करने में सहायता प्राप्त होती है।

2) स्टेनले हॉल के अनुसार किशोरावस्था 'तुफान एवं तनाव की अवस्था' होती है। यह इसलिए होता है क्योंकि शरीर के अन्दर विभिन्न प्रकार के तीव्र परिवर्तन होते हैं। यौवनारम्भ एवं विकास की तीव्रता विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों को प्रारम्भ कर देती है। प्रारम्भिक एंव द्वितीयक लैंगिक विशेषताएँ पर्याप्त विकसित हो जाती हैं। किशोरों और किशोरियों दोनों के हारमोन उनके शारीरिक वृद्धि एवं मानसिक परिवर्तनों, दोनों को तीव्रता से प्रभावित करते हैं। किशोर उच्च सांवेगिकता का अनुभव करता है जिसमें मूड परिवर्तित होना, उल्लास की अवधि, अकेलापन एवं प्रत्यागमन सम्मिलित हैं। इस सभी परिवर्तनों के साथ समायोजन तथा प्रौढ़ विशेषताओं का उदय किशोरावस्था में महत्वपूर्ण होते है।

बोध प्रश्न VIII

1) प्रौढ़ की परमावश्यक भूमिकाएँ

परमावश्यक भूमिकाएँ प्रौढ़ों के लिए विकासात्मक लक्ष्य होती हैं। ये भूमिकाएँ मुख्यतः कार्य विवाह तथा अभिभावकत्व के क्षेत्र में होती हैं। एक व्यक्ति को इन तीनों क्षेत्रों में समायोजन प्राप्त करना चाहिए। व्यावसायिक समायोजन प्रशिक्षण, कार्य की पर्याप्तता, कार्य हेतु पूर्व अनुभव, कार्य में निपुणता तथा कार्य मूल्य पर निर्भर करता है जो एक व्यक्ति में होता है।

वैवाहिक समायोजन हेतु पति–पत्नी दोनों को सभी क्षेत्रों में तालमेल स्थापित करने की आवश्यकता होती है। एक दूसरे के प्रति इमानदारी एवं मित्रता इसका आधार तैयार कर सकती है। एक दूसरे के प्रति मुक्त संचार, विश्वास, आदर एवं प्रेम की आवश्यकता होती है। अभिभावकत्व के साथ समायोजन बच्चों को स्वीकृति प्रदान कर तथाउनके विकास की देखभाल द्वारा अर्जित किया जा सकता है। बच्चों की चाह, उनका लिंग, संख्या, उनके बीच अन्तर, माता–पिता की आयु जिसमें बच्चों का जन्म हो, बच्चे के प्रति माता–पिता की अभिव्यक्ति, वित्तीय स्थिति आदि कारक अभिभावकत्व समायोजन में महत्वपूर्ण होते हैं।

बोध प्रश्न IX

1) क) मध्यावस्था संकटः मध्यावस्था के प्रति व्यक्ति में किशोरावस्था के विपररीत अनुभव होता है, जो हारमोन स्तर के घटने से सम्बन्धित है। महिलाओं में रजोनिवृत्ति होने से उनमें बच्चों को जन्म देने की क्षमता समाप्त हो जाती है। पुरुषों में भी इस क्षेत्र में गिरावट आती है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अनाकर्षित तथा मूड़ी हो जाता है और प्राथमिकताओं की पहचान करता है तथा जीवन का मूल्यांकन करता है। चूकि ये परिवर्तन अक्सर नियंत्रण के बाहर कर देते हैं, इसीलिए मध्यावस्था संकट शब्द का उपयोग किया जाता है।

ख) खाली घोसले के लक्षण का अनुभव माता–पिता तक करते हैं जब मध्यावस्था में बच्चे जो अब वयस्क होते हैं अपनी पढ़ाई के लिए, नौकरी हेत या विवाह के बाद घर छोड़ना कही अन्यत्र चले जाते हैं इसके परिणामस्वरूप घर केवल पति–पत्नी को छोडकर खाली हो जाता है। इस अवस्था में समायोजन उनके सम्बन्धों की प्रगाढ़ता तथा बारीक अर्थपूर्ण गतिविधियों के आधार पर किया जा सकता है।

बोध प्रश्न X

1) वृद्ध व्यक्ति अपने अंगों की प्रकार्यता एवं अंगों की व्यवस्था में गिरावट के कारण विभिन्न बीमारियों का सामना करते हैं। इसके अतिरिक्त नेत्रहीनता, वधिरता, अस्थितियों की अक्षमता जो हड्डियों के टूटने, जोड़ों के दर्द आद से उत्पन्न होती है।, आदि अक्षमताओं से ग्रस्त हो जाता है। इसी कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गतिशीलता कम हो जाती है। कभी–कभी वह दूसरों पर यहाँ तक कि अपने दैनिक जीवन की मूल अवधारणाओं की पर्ति यथा भोजन करने, स्नान करने तथा स्वयं की देखभाल के लए भी आश्रित हो सकता है इसके अतिरिक्त उसे पति/पत्नी या बच्चों की मृत्यु का भी सामना करना पड़ जाता है साथ ही अपने स्वयं की मृत्यु की समस्या का समाधान भी करना पड़ता है। मृत्यु का भय सबसे प्रभावी संवेग हो सकता है, तथा व्यक्ति को अक्सर परामर्श की आवश्यकता रहती है।

इकाई 4 व्यक्तित्व के सिद्धान्त

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 एरिक एरिक्सन : व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धांत

4.3 कार्ल रोजर्स : व्यक्तित्व का दृश्य प्रपंचशास्त्र (फेलोमेनोलोजिकल) सिद्धांत

4.4 अब्राहम मास्लो : व्यक्तित्व का मानवीय सिद्धांत

4.5 बी.एफ.स्कीनर : व्यक्तित्व का व्यवहारवादी–शिक्षण का सैद्धांतिक दृष्टिकोण

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित कुछ महत्वपूर्ण व्यकितत्व के सिद्धान्तों को सरलता से प्रस्तुत किया गया है। हालाकि मनोवैज्ञानिकों द्वारा अलग–अलग व्यक्तित्व के सिद्धांतों की रचना की है परन्तु इस इकाई में कुछ मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों का ही सीमित वर्णन कियाग या है जो कि व्यावसायिक समाज कार्य व्यवहार में सहायक होंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- व्यक्तियों के व्यवहार को बताने में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न अवधारणाओं के बारे में अवगत हो सकेंगेय
- व्यावहारिक कार्य के क्षेत्र में इन्हें प्रयोग करने में समर्थ हो सकेंगेय और
- व्यक्तियों के व्यक्तित्व के संबंध में अधिक जानकारी अर्जित करने के लिए रुचि का विकास कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

जैसा कि पूर्व में वर्णित किया गया है उसी आधार पर, इस इकाई में संक्षेप में व्यक्तित्व के कुछ सिद्धान्तों पर चर्चा की गई है जो कि व्यावसायिक समाज कार्य व्यवहार में प्रासंगिक है। पूर्व की इकाई की व्याख्या से आप व्यकितत्व शब्द का विभिन्न अर्थ क्या है इसकी व्याख्या करने में सक्षम हो गए होंगे। यह मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण उपक्षेत्र है जिसमें व्यक्तित्व के विषय में शोध मूल्यांकन एवं सिद्धांत का अध्ययन कि जाता है। यद्यपि मनोविज्ञान में भी व्यक्तित्व शब्द के अर्थ पर सहमति नहीं बन पायी है, यहाँ तक कि व्यक्तित्व शब्द के उतने अर्थ हैं जितने मनोवैज्ञनिकों ने व्यक्तित्व कासे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

इस इकाई में हम कार्ल रोजर्स द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करेंगे जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व से संबंधित स्व–संगठित, स्थायी, व्यक्तिपरक ज्ञात सत्ता का वर्णन किया है जो कि हमारे सभी अनुभवों के केन्द्र में होता है।

हम एरिक एरिक्सन द्वारा दिए गए सिद्धांत का भी अध्ययन करेंगे जिसमें उन्होंने जीवन सम्बन्धी मनोसामाजिक संकट की श्रृंखला का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, जो कि विकासात्मक मील का या अवस्था से संबंधित है। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व की क्रियाओं के परिणाम में कुछ संकट स्थिर होते है।

बी.एफ. स्किनर उस समय का एक उपयोगी मनोवैज्ञानिक था जिसने व्यवहार के विज्ञान की बुनियाद मुहैया करायी जो कि उपर्यावरणीय आकस्मिकताओं के पुनर्बलन द्वारा सीधे हमारे निकट के सभी व्यवहार द्वारा नियंत्रित होता है। सीखने की प्रक्रिया द्वारा हमारा व्यवहार परिष्कृत या अधिगमित होता है।

लेकिन तो भी, मानव व्यक्तित्व की मुख्य परिकल्पना सिग्मंड फ्रायड द्वारा प्रस्तुत की गयी है जो मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के पिता कहे जाते हैं। इन्होंने व्यक्तित्व की संरचना को इड, इगो तथा सुपर इगो में विभक्त किया है। इनके इस सिद्धांत का अध्ययन हम दूसरी इकाई में विस्तार पूर्वक करेंगे।

4.2 एरिक एरिक्सनः व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धांत

इस क्रम में हम समझेंगे कि एरिक्सन ने कैसे मनोविश्लेषण संरचना के सिद्धान्त का निर्माण एवं उसका विस्तार किया और आधुनिक दुनिया की समझ के लिए कैसे इसका सुधार हुआ सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसको कि सबसे पहले सिमण्मण्ड फ्रायड ने मनोविश्लेषण की अवधारणा के रूप में दिया था क्योंकि एरिक्सन की मानव विकास की अवधारणा के बारे में दिया गया योगदान फ्रायड की मनोलैंगिक विकास की अवधार का एक क्रमिक विस्तार से अधिक कुछ नहीं है।

वास्तव में एरिक्सन ने फ्रायडीयन एवं मनोलैंगिक विकास के बीच जो खाई थी उसको जोड़ने तथा वर्तमान समय में व्यक्तित्व विकास में सामाजिक कारकों की भूमिका के सम्बन्ध में जानकारी देने का प्रयत्न किया।

यद्यपि वे व्यक्तित्व के जैविकीय एवं लिंगीय आधार के प्रतिबद्ध हैं जैसे फ्रायड। तो भी उन्होंने फ्रायड के विकास सम्बन्धी विचारों को अपने विकास की आठ अवस्थाओं के द्वारा विस्तारित किया। उन्होंने व्यक्तित्व विकास जैविकीय एवं सामाजिक कारकों के बीच लेने वाली महत्वूपर्ण अन्तःक्रियाओं पर बल दिया। आठ अवस्थाओं का चित्रण चित्र–1 में किया गया है।

आइए अब हम एरिक्सन सिद्धान्त द्वारा निरूपित मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं पर विचार करेंगे।

1) शैशावस्था : मूल विश्वास बनाम अविश्वास

एरिक्सन के सिद्धान्त यह पहली मनोसामाजिक अवस्था है जो फ्रायड के मुखवस्था से ली गयी है यह अवस्था मानव जीवन के प्रथम वर्ष के आसपास की होती है। इसी अवस्था में शिशु बालक के मूल विश्वास की स्थापना होती है जो कि उसके अच्छी नींद आने में मूल विश्वास की स्थापना होती है। उसके अच्छी नींद में सोने की क्षमता को प्रदर्शित करती है तथा वह आराम से आहार लेता है और मलत्याग करता है। प्रत्येक दिन उसके जागने के घंटों में वृद्धि होती है और शिशु ज्यादा अपनापन अपने इंद्रिय अनुभवों से महसूस करता है। जब शिशु लोगों के प्रति सकारात्मक क्रिया अपनाता है तो उसमें पहचानने की क्षमता आती है।

यद्यपि शिशु द्वारा निरन्तरता, एकरूपता और स्थिरता का अनुभव अन्य लोगों से होने पर यह एन पर विश्वास करना सीखता है और उसमें विश्वास करता है। साथ–साथ यदि अभिभावकों द्वारा उक्त अनुभवों में अनुरूपता नहीं पायी जाती है। तो इसका परिणाम शिशु में अविश्वास की भावना उत्पन्न होती है। इस अवस्था में प्रत्याशा पहली मनोसामाजिक योग्यता या गुण है जो शिशु विश्वास बनाम अविश्वास के मध्य संघर्ष द्वारा दृष्टता से स्वतंत्रपूर्वक अर्जित किया जाता है।

2) प्रारम्भिक बाल्यावस्था : स्वतंत्रता बनाम शर्म और संदेह

यह अवस्था फ्रायड के गुदा अवस्था के अनुरूप है और यह मानव के दूसरे और तीसरे वर्ष की अवस्था कही जा सकती है। इस अवस्था के बीच में बालक यह सीखता है कि उससे क्या अपेक्षाएँ हैं, बालक के रूप में उसके कर्मव्य और अधिकार तथा उसकी क्या सीमाएँ हैं। इस अवस्था में वह नए प्रयत्न करता है और प्रयत्न प्रदर्शन के द्वारा होता है। जिसके माध्यम से स्व–नियंत्रण का विचार बालक में आने पर उसमें स्वतंत्रता की स्थायी भावना, सद्भावना और गर्व की अनुभूति होती है। यदि स्वनियंत्रण नहीं आ पाता है तो उसमें संदेह की भवना भी जाती है।

इस अवस्था का मुख्य गुण इच्छाशक्ति की उत्पत्ति है। इच्छाशक्ति में वृद्धि होने पर बालक में मनोसामाजिक दृढ़ता आती है जिससे कि उसमें स्वनियंत्रण का व्यवहार निर्णय लेने तथा मुक्त होकर सोचने की क्षमता आती है। बालक स्वयं तथा अन्य के द्वारा यह सीखता है कि उससे क्या उम्मीद की जाती है क्या नहीं। बालक द्वारा क्रमिक रूप से आवश्यक और न्यायपूर्ण बातों को ग्रहण करने हेतु इच्छाशक्ति जिम्मेदार होती है।

3) खेल की अवस्थाः पहल प्रवृत्ति बनाम अपराध बोध

यह अवस्था फ्रायड के प्रजनन कामावस्था से ली गयी। यह अवस्था चार वर्ष की आयु से स्कूल जाने की अवस्था होती है तथा लोगों से दुनियाँ की चुनौतियों से निपटने हेतु नये तरीके सीखता है तथा लोगों से उसके सम्बन्ध में अनुमोदन प्राप्त करता है। इस अवस्था में बच्चा जहाँ तक हो सकता है अपने बराबर का तथा बड़े लड़कों के साथ गतिक निपुणता सीखता है जिससे उसमें विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग लेना आ जाता है। इस अवस्था में शिशु लड़का एवं लड़की में अन्तर करने लगता है। यह अवस्था पहल करने की, ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने की तथा उत्तरदायित्व ग्रहण करने की होती है। स्वायत्तता पहल की प्रवृत्ति के साथ होती है। जो बच्चे को उद्देश्य एवं लक्ष्य को प्राप्त करने में उसके निर्धारण, नियोजन एवं लक्ष्य को समझने की गुणवत्ता प्रदान करते हैं। यदि बच्चे में अपने उद्देश्य एण्वं लक्ष्य के प्रति उक्त गुण नहीं होते हैं तो हो सकता है उसमें अपराध बोध की भावना आ जाये।

इस अवधि में मनोसामाजिक दृढ़ता मुख्य रूप से उत्पन्न होती है या उद्देश्यों को प्राप्त करने का गुण विकसित होता है। बालक की सर्वाधिक गतिविधियाँ इसी अवस्था में होती हैं। खिलौने के द्वारा बच्चा खेजी, कार्य करना, हताशा तथा प्रयोगात्मक होना सीखता है जो उद्देश्य को प्राप्त करने के गुण के उत्पन्न होने का परिणाम है। बालक द्वारा किसी चीज का क्या उद्देश्य है तथा आंतरिक एवं बाह्य दुनिया के बीच सम्बन्धों को पहचानना सीखता है। अतः बालक के विकास के लिए एक कल्पनाशील एवं बिना अवरोध के खेल बहुत ही महत्वपूर्ण है।

4) क्रीड़ा अवस्था : उद्यमिता बनाम हीनता

यह अवस्था फ्रायडीय सिद्धान्त के प्रकटता की अवस्था से लिया गया है और यह अवस्था 6 वर्ष से 11 वर्ष के बीच की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चा औपचारिक शिक्षा द्वारा

पहली बार पढ़ना, लिखना, अन्य व्यक्तियों के साथ सहयोग आदि का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना सीखता है। इस अवधि में बच्चे में तर्क करने की शक्ति में वृद्धि एवं स्व–अनुशासन आता है तथा इसी तरह वह अपने सहपाठियों से भी वर्णित नियमों के अनुसार व्यवहार करता है। इस अवधि में बच्चा स्कूल के द्वारा अपने संस्कृति के तकनीकी पक्ष को समझाता है जिससे उसमें उद्यमिता की सोच विकसित होती है अर्थात् उसका कार्य स्कूल जाना, घर पर कार्य करना, उत्तरदायित्व ग्रहण करना, संगीत करना, मानवीय कुशलताएँ सीखन एवं खेलों में भागीदारी करना सम्मिलत हो जाता है। अगर बच्चा इन उपर्युक्त कार्यों को सीख पाने में अपने आप को असमर्थ पाता है तो यह इस अवस्था में हीनता से क्षमता का शिकार हो जाता है जिसे इस अवस्था का दुष्परिणाम कहा जा सकता है।

इस अवस्था का गुण बच्चे में क्षमता का विकसित होना है क्योंकि यहाँ पर वह अपने आपको कार्य के प्रति समर्पित करता है और कार्य पूरा करना सीखता है।

fp= % 1 ,fjDlu d eukslkekftd odkl dh vkB voLFkkvk dk fp=.k

(एरिक एच. एरिक्सन, 1963 ए.पी. 273, के चाइल्डहुड एण्ड सोसाइटी से लिया गया है।)

5) किशोरवस्था – पअचान बनाम भूमिका भ्रम

यह अवस्था व्यक्ति के मनोसामाजिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण समझी जाती है। अब न तो वह बच्चा है और न ही वयस्क। यह अवस्था 12 या 13 वर्ष की उम्र से 20 वर्ष की उम्र तक रहती है। इस म्र में एक किशोर को समाज की विभिन्न माँगों तथा भूमिकाओं में

परिवर्तन का सामना करना पड़ता है जो कि वयस्कता की चुनौतियों का सामना करने के लिए आवश्यक है। यह समय व्यावसायिक योजनाओं को बनाने के लिए होता है। वह अपने अन्दर निहित विशेषताओं जैसे– उसकी पसन्द एवं नापसंद, भाविष्य के पूर्वानुमानिक लक्ष्य और अपने भविष्य पर नियंत्रण की शक्ति और उद्देश्य के बारे में जागरूक होता है। इसी अवस्था में वह परिभाषित करता है कि वह वर्तमान में वह क्या है और भविष्य में क्या बनना चाहता है। बचपन से वयस्कता के इस सन्धिकाल में, जो एक किशोर की पहचान निर्माण की अवस्था है, भूमिका निर्वहन में भ्रम या पहचान में भ्रम में सबसे ज्यादा प्रभावित होता है। इस अवस्था में वह अपने आपकों अकेला, चिन्तित और अनिश्चितता की स्थिति में पाता है। किशोर यह महसूस कर सकते हैं कि उनहें निर्णय लेने के लिए मजबूर किया जा रहा है और वे पहले से अधिक विरोधी बन सकते हैं किशोरों का व्यवहार इस अव्यवस्थित अवस्था में सामंजस्य और अननुमेय होता है। इस दौरान किशोर के अन्दर घृणात्मक पहचान भी विकसित हो सकती है कि वह निकृष्ट और अयोग्य है।

इस अवस्था में कर्तव्यपरायण और ईमानदारी का सद्गुण विकसित होता है। यद्यपि वह लैंगिक रूप से परिपक्व और जिम्मेदार हो जाता है परन्तु वह सन्तोत्पत्ति के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं होता है। एक तरफ तो उससे वयस्कों जैसे व्यवहार की आशा रखी जी है वहीं दूसरी तरफ उसे एक वयस्क की भांति लैंगिक स्वतंत्रता की समझ खोजता है और मूल्यों को प्रतिपादित करने की कोशिश करता है। मूल्यों का वह समूह जो उत्पन्न होता है एरिक्सन उसे कर्तव्यनिष्ठा एवं ईमानदारी की संज्ञा देते हैं और इसी की नींव पर वह अपनी पहचान बनाते हैं।

6) अल्पवयस्कता : आत्मीयता बनाम एकाकीपन

यह अवस्था वयस्क जीवन की औपचारिक शुरुआत है। यह सामान्यतः वह अवधि होती है जब व्यक्ति प्रणय निवेदन, विवाह एवं प्रारम्भिक पारिवारिक जीवन में सम्मिलित होता है। यह अवस्था किशोरावस्था के अन्त से वयस्कता अर्थात 20 वर्ष से लगभग 24 वर्ष चलती है। अब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ सामाजिक एवं लेंगिक आत्मीयता के लिए तैयार हो जाता है। अब यह वह जीवन में "स्थिरता" लाने की तरफ अभिमुख होता है। यह वह समय है जब उसे किसी को प्यार करते, किसी के साथ लैंगिक सम्बन्ध बनाने जिसके साथ वह विश्वसनीय सम्बन्ध बाँट सकता है, की आवश्यकता होती है।

इस अवस्था की बाधा एकाकीपन है, अर्थात् सम्बन्धों से दूर रहना क्योंकि वह आत्मीयता के साथ समझौता करना नहीं चाहता। यह अवस्था "प्रेम" के सद्गुण की होती है। प्रेम को दूसरों के प्रति समर्पित होने की योग्यता मानते हैं जिसमें देखरेख, आदर और जिम्मेदारी की भावना निहित है।

7) यह अवस्था जीवन के मध्य वर्षों में 25 वर्ष से 65 वर्ष के मध्य होती है।

इस अवस्था में प्रजनन होता है जब व्यक्ति न सिर्फ आने वाली पीढ़ियों के विषय में चिन्तित होता है बल्कि उस समाज के विषय में भी सोचता है जिसमें भावी पीढ़ी जीवन बिताएगी और कार्य करेगी। यह अवस्था मुख्यतः सन्तान उत्पत्ति, उत्पाद, विचार इत्यादि से सम्बन्धित होती है। जब प्रजनन क्षमता कमजोर होने लगती है या प्रकट नहीं होती है तो व्यक्ति में स्थिरता आती है। इस अवस्था में देखभाल का सद्गुण विकसित होता है जो दूसरों के प्रति की गयी चिन्ता में व्यक्त होता है।

8) परिपक्वता : सम्पूर्णता बनाम निराशा

इस अवस्था को हम ऐसे स्तर की संज्ञा दे सकते हैं जहाँ व्यक्ति लोगों, चीजों, उत्पादों, विचारों की देखभाल एवं जीवन की सफलताओं एवं असफलताओं के अनुभवों के साथ

समायोजित होने के बाद पहुँचता है। यहाँ व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हट कर अपने बीते हुए जीवन पर केन्द्रित होता है। यह ऐसा समय है जब व्यक्ति अपने आपको अनगिनत माँगों से घिरा हुआ पाता है जैसे गिरती हुई शारीरिक क्षमता और स्वास्थ्य, सेवानिवृत्ति और आय में कमी, जीवन साथी और विभिन्न मित्रों की मृत्यु और अपने उम्र के लोगों के साथ नए सम्बन्धों का जुझाव । यह मानव विकास की पिछली सभी अवस्थाओं का संकलन, समेकन और मूल्यांकन है। सम्पूर्णता के एक आवश्यक अंग के रूप में व्यक्ति के जीवन में अपरिपूर्ण अवसरों और खोई हुई दिशाओं के सम्बन्ध में निराशा का जन्म होता है। उसको यह महसूस होता है कि अब नई शुरुआत करने के लिए बहुत देर हो चुकी है। व्यक्ति के अन्दर मृत्यु का भय, अपरिवर्तनियता असफलता की भावना और एक निरन्तर तल्लीनता की भावना जो किया जा सकता है की तरफ रहती है।

सम्पूर्णता और निराशा का सामना करने के पश्चात् 'समझदारी' का सदगुण विकसित होता है। एरिक्सन विश्वास करते हैं कि वृद्धावस्था में ही सच्ची परिपक्वता का विकास होता है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी :क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) एरिक्सन के सिद्धान्त ने किशोरावस्था को इतना महत्वपूर्ण स्थान क्यों दिया है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.3 काल रोजर्स : व्यक्तित्व का दृश्य प्रपंच शास्त्र (फेनोमेनोलोजिकल) सिद्धान्त

रोजर्स का व्यक्तित्व का स्व सिद्धान्त उनके 'सेवार्थी–केन्द्रीय उपचार' अभिगम पर आधारित हैं। वे व्यक्ति की महत्तव पर जोर डालते हैं जो अपने भविष्य का निर्धारण स्वयं करता है। उनकास सिद्धान्त दो महत्वपूर्ण आधारों पर आधारित है।

(क) जीव (ख) स्वयं

किसी व्यक्ति के भीतर किसी विशिष्ट क्षण में होने वाले समस्त अनुभवों का केन्द्र जीव होता है। ये अनुभव जीव के भीतर किसी क्षण हो रहे सभी जागरूकताओं को जो उसको उपलब्ध है, को भी सम्मिलित करता है। इन सभी अनुभवों की सम्पूर्णता 'फनोमेनाल क्षेत्र'का निर्माण करती है। 'फेनामनेल क्षेत्र' चेतनता के समान नहीं हेता। एक निश्चित समय में यह चेतना यांकेतिक अचेन या असांकेतिक अनुभवों से निर्मित होता है। 'फेनोमिना क्षेत्र' व्यक्ति के संदर्भो के क्षेत्र से सम्बन्धित है जो केवल व्यक्ति द्वारा ही जाना जाता है। रोजर्स के अनुसार एक व्यक्ति का व्यवहार फेनोमिना क्षेत्र (जो विषयगत वास्तविकता) पर निर्भर करता है न कि बाझ परिस्थितियों पर । एक व्यक्ति का ज्ञान और अनुभव न केवल उसकी वास्तविकता का निर्माण करते हैं परन्तु उसकी क्रियाओं का अधार भी बनते हैं। व्यक्ति घटनाओं का उत्तर उसी प्रकार देता है जिस प्रकार वह उसे देखता और समझाता है।

उदाहरण के लिए रेगिस्तान में खोया हुआ एक प्यासा व्यक्ति उत्सुक होकर पानी के तालाब की तरफ वैसे ही दौड़ेगा जो कि मृगजल है जैसे कि वास्तविक पानी के तालाब की ओर। इसी तरह दो व्यक्ति जो एक ही तरह की घटनाओं को देखते हैं बाद में दो विभिन्न परिणामों की व्याख्या कर सकते हैं जो कि अक्सर उड़न तश्तरी और सड़क दुर्घटनाओं के चश्तदीद गवाहों के साथ होता है। इस तरह व्यक्ति अपने प्रतीकात्मक अनुभवों को सांसारिक अनुभवों के साथ ही अपनी तरह से मिलाने का कार्य करता है। वास्तविकता की यह जाँच उसे सार का विश्वसनीय ज्ञान प्रदान करती है जिससे उसके अंदर यथार्थ रूप में व्यवहार करने की क्षमता उत्पन्न होती है। परन्तु कुछ अनुभव अमूल्यांकित रह जाते हैं या उचित करने की क्षमता उत्पन्न होती है। परन्तु कुछ अनुभव अमूल्यांकित रह जाते हैं या उचित रूप से मूल्यांकित नहीं हो पाते जिससे क्ति काल्पनिक रूप से व्यवहार करने लगता है। अतः व्यक्ति को उपरी तौर से बाह्य यथार्थता की कुछ संकल्पना होनी चाहिए अन्यथा वह यथार्थता की कुछ संकल्पना होनी चाहिए अन्यथा वह यथार्थ के अन्दर की तस्वीर का बाह्य के साथ मूल्यांकन का कार्य नहीं कर सकता।

इसको हम एक अन्य उदाहरण की सहायता से समझ सकते हैं। मान लीजिए, एक व्यक्ति अपने भोजन में नमक डालना चाहता है और उसके सामने दो एक जैसे जार रखे हैं, जिसमें एक में नमक हैं और दूसरे में मिर्च । व्यक्ति यह विश्वास करता है कि जार जिसे ढक्कन में ज्यादा छेद है नमक है परन्तु पूर्ण विश्वास न करके जार में रखे पदार्थ को अपने हाथ में लेता है। अगर हाथ में आए कण काले की जगह सफेद है तो उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि यह नमक है, परन्तु अत्यन्त सावधानी करतने वाला व्यक्ति, उसके बाद भी, कुछ कण अपनी जीभ पर रखकर यह जाँचने का कार्य करता है कि नमक की जगह कहीं यह सफेद मिर्च तो नहीं अतः यहाँ पर देखने योग्य बात है कि व्यक्ति अपने विचारों का विभिन्न प्रकार के इन्द्रीय आँकड़ों के विरूद्ध मूल्यांकन कर रहा है। इस परीक्षण के माध्यम से कम अनिश्चित सूचना को प्रत्यक्ष ज्ञान के विरूद्ध मूल्यांकित किया जा रहा है।

प्रत्यक्षीकरण अनुभवों की प्रक्रिया के बाहर, उनमें अर्थ जोड़ना तथा वाह्य वास्तविकता के साथ उनका परीक्षण फेनोमिना क्षेत्र के एक भाग का उदय करता है जो धीरे–धीरे अलग होता जाता है और इसे ही श्आत्म कहते है। आत्म को मैं, मेरे तथा मुझमें की अवधारणा द्वारा सर्वश्रेष्ठ रूप से समझा जा सकता है। आत्म (जिसे वास्तविकता आत्म भी कहते हैं) के अतिरिक्त एक आदर्श आत्म संप्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता है। आदर्श आत्म उस संप्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता है जो एक व्यक्ति में उपस्थित होता है जो फ्रायड के सिद्धांत के पराहम के बहुत नजदीक है।

जीवन और स्वयं की इन अवधारणाओं की महत्ता को स्पष्ट करते हुए रोजर्स ने कहा कि स्वयं जैसा कि देखा है और जीव के वास्तविक अनुभव के सामंजस्य और असामंजस्य की विवेचना से अधिक स्पष्ट होता है। जब जीव के प्रतीकात्मक अथवा चेतन अनुभव जो स्व का निर्माण करते हैं जीव के अनुभवों के समरूप होते हैं तो व्यक्ति समायोजित, परिपक्व और सक्रिय होता है। जबकि दूसरी तरफ जीव और स्वयं के अनुभवों में कोई सामंजस्य नहीं है तो व्यक्ति भयभीत और चिन्तित महसूस करता है ऐसा व्यक्ति सुरक्षात्मक ढंग से व्यवहार करता है और कठोर होता है।

अतः हम देखते हैं कि रोजर्स का सिद्धान्त वकास की निरन्तरता वर विशेष बल देता है। व्यक्तित्व के सिद्धांत व्यक्ति के निरन्तर स्व को विकसित करते हुए प्रयासरत रहता है। वह अपने संदर्भ में ढाँचे में कवल उन्हीं अनुभवों को सम्मिलित करता है जो यह समझता है कि उनके लिए उचित अनुम हैं और उन्हें नकार देता है जो अनुचित है। अतः रोजर्स के सिद्धान्त मेंव्यक्तित्व विकास, व्यक्ति के अपने अनुभवों को देखने और उसके वास्तविक, सामाजिक एवं अन्तवैयक्तिक अनुभवों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) कार्ल रोजर्स द्वारा दिए गए शब्द "फनोमेलन क्षेत्र" से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 अब्राहम मास्लोः व्यक्तित्व का मानवीय सिद्धान्त

मास्लों मानवतावादी थे। वे स्वयं मानवजाति को संसार में अच्छा कार्य कर सकने में विश्वासकरते थे। इनका मानवीय व्यक्तितव को व्यवहार के द्वारा समझने का बी.एफ. स्कीनर (आगे वर्णित) एवं मनोविश्लेषकों से भिन्न था। उन्होंने कहा कि मानव प्राणी चाहने वाला प्राणी है जो कि कभी–कभी ही सीधे रूप से पूर्ण संतुष्ट होता है। मानव जीवन की सभी समय कुछ पाने की इच्छा सम्बन्धी विशेषता होती है। यदि एक इच्छा की संतुष्टि होती है तो बाकी रह जाती है। मास्लो कहते हैं कि बिना निम्न क्रम की आवश्यकता से संतुष्ट हुए बगैर एक व्यक्ति कैसे उच्च क्रम की आवश्यकता के प्रति जागरूक हो सकता है। उन्होंने सामान्यता, मानव की स्वाभाविक इच्छाओं/आवश्यकताओं को एक सोपान द्वारा क्रमबद्ध किया है। इन्होंने आवश्यकताओं की अपनी व्यवस्था की है जो कि दो श्रेणियों में श्रेणीबद्ध है :

क) कमी की आवश्यकता।

ख) वृद्धि की आवश्यकता।

कमी की आवश्यकता मे काम, निद्रा, सुरक्षा सम्मिलित है जिसके द्वारा उच्च संवेदी प्रेरक की उत्पत्ति होती है। यह आवश्यकता सभी मानवीय प्राणियों को शारीरिक रूप से लड़ने हेतु मूल, शक्तिशील एवं स्पष्ट होती है। दूसरी श्रेणी की आवश्यकता में बचाव, अपनतत्व तथा पयार की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्मविश्लेषण भी सम्मिलित होती है।

अब संक्षेप में मास्लो की आवश्यकताओं को श्रेणीबद्ध रूप में नीचे से ऊपर के क्रम में वर्णन किया जाएगा :

1) शारीरिक आवश्यकताएँ

यह आवश्यकता प्राणियों के शारीरिक रख–रखाव से प्राथमिक रूप से सीधे सम्बन्धित है जिससे वे सूक्ष्म रूप से आनन्द प्राप्त करते हैं। एक व्यक्ति अगर मूल आवश्यकताओं को प्राप्त करने में असफल होता है तो वह कैसे ऊपर की उच्च आवश्यकताओं से संतुष्ट होने के योग्य होगा। उदाहरणार्थ, एक बहुत भूखा व्यक्ति संगीत सीखने, राजनीति में जाना तथा कोई नया रचनात्मक सिद्धान्त विश्व व्यवस्था हेतु नहीं बना सकता है। बिना किसी संदेह के मानवीय व्यवहार भौतिक आवश्यकताओं के छानबीन से समझा जा सकता। बहुत से आत्मकथाओं एवं अनुभवों का वर्णन इतिहास में है जो बताया है कि भोजन और कटर पानी की कमी ने उनके व्यवहार पर गलत प्रभाव डाला है। उदाहरणार्थ ध्यान केन्द्रित करने

वाले नाणी के शिविर में जो कि द्वितीय विश्वयुद्ध में लगाया गया था। यह एक सामान्य बात थी कि जो कैदी लम्बे से समय से ग्रस्त थे तथा अपने नैतिक स्तर मुक्त करने के लिए उन्हे प्रताड़ित किया जाता था वे एक दूसरे का खाना चुराते थे।

2) सुरक्षा आवश्यकताएँ

जब भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति व्यक्ति को सफलतापूर्वक हो जाती है तो वह सुरक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आगे आता है। सुरक्षा आवश्यकता आदेश एवं बचाव के रख–रखाव से सम्बन्धित है। यहाँ प्राथमिक प्रेरक शक्ति अपने पर्यावरण के साथ निश्चितता क्रम संरचना एवं पूर्व कथन को निश्चित करता है। मास्लो ने सुझाव दिया कि यह आवश्यकता बच्चों एवं बड़े बच्चों में महसूस की जाती है, क्योंकि उसके सम्बन्ध और निर्भरता वस्कों पर होती है। उदाहरणार्थ यदि बच्चे यकायक सकेले छोड़ दिया जाय तो वह डरता है तथा तेज आवाज या रोशनी चमकाने पर चौंकाता है, तो भी सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता बाल्यावस्था की आयु के बाहर भी अपना सक्रिय प्रभाव छोड़ता है। वह उसमें निहित सुरक्षा एवं वित्तीय संरक्षण को वरीयता देता है वह बैंक खाता, भवन को खरीदना, स्वास्थ्य सुविधा हेतु जीवन बीमा में निवेश करता है जिससे बेरोजगारी या वृद्धावस्था के समय उसका भविष्य सुरक्षित रहे।

3) अपनत्व एवं प्यार की आवश्यकता

मास्लो द्वारा बतायी गयी मानव की यह आवश्यकता की तसरी सीढ़ी है जो कि पहली एवं दूसरी आवश्यकता की सीढ़ी को पूरा करने के बाद आती है। यह आवश्यकता मानव द्वारा सामूहिक जीवन में अपनी पहचान पर जोर देती है जो कि उसकी मूल मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति होती है। इस आवश्यकता के अन्तर्गत वह समाज के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध कारा बनाता है तथा किसी संगठन तथा परिवार की स्वीकारोक्ति चाहता है। यदि समूह की सदस्यता व्यक्ति को नहीं मिलती है तो उसमें अकेलापन, समाज द्वारा बहिष्कृत, बिना दोस्तों के तथा अस्वीकार भावना आ जाती है। मास्लो ने फ्रायड के इस विचार था कि प्यार काम का पर्यायवाची नहीं है लेकिन दो व्यक्तियों के बीच परिपक्व प्यार में स्वस्थ व्यार समाहित रहता है। प्यार के द्वारा तथा उसको स्वीकार करने से उसमें स्वस्थ भावना का गुण आता है। प्यार न होने की स्थिति में उसमें निरर्थकता, खालीपन तथा शत्रुता उत्पन्न होती है।

fp= % 2 ekLyk dh vko';drk dh vuØe fl)kUr dk fp=.k

4) स्वाभिमान की आवश्यकता

एक व्यक्ति प्यार की आवश्यकता तथा अन्य लोगों के साथ प्यार की आवश्यकता जब पूरी होती है तो स्वाभिमान की आवश्यकता जन्म लेती है। यह आवश्यकता दो समूहों में

विभाजित है, (क) स्व सममान, स्व आदर एवं स्व मूल्यांकन (ख) दूसरों के द्वारा आदर सम्मान। पहले समूह में सक्षमता विश्वास, व्यक्तिगत संघर्ष, सलाह, कुछ पाने, आत्मनिर्भरता तथा स्वतंत्रता के विचारों की इच्छा सम्मिलित होती है। लक्ष्य प्राप्त करने की क्षमता तथा जीवन में चुनौतियों के सम्बन्ध में व्यक्तिगत गुणों के बारे में उसकी (पुरुष/स्त्री) आवश्यकताओं को जानता है।

दूसरे समूह में स्वयं की प्रतिष्ठा, पहचान, स्वीकारोक्ति, ध्यान प्रस्थिति, यश, नाम कमाना और प्रशंसा सम्मिलित है। इस समय व्यथ्कत क्या कर सकता है इसके लिए स्वयं को जाँचता है इस स्थिति में व्यक्ति को वे क्या कर सकते हैं इसके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है अर्थात् वे स्वयं के प्रति सम्मान का अनुभव करें क्योंकि दक्षताओं को मान्यता दिया जाना तथा उनके मूल्या दूसरों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

5) आत्म विश्लेषण की आवश्यकता

यदि सभी पिछली आवश्यकताएँ सफलतापूर्व तुष्ट हो जाती हैं तो अन्त में आगे आने वाली आवश्यकता की विशेषता यह बताते हैं कि आत्मविश्लेषण व्यक्ति में सब केछ की इच्छा एवं उसको पाने की क्षमता के रूप में उत्पन्न होतीहै। वह परिपूर्णता चाहता है वह कार्य करने की ऊँचाई पर पहुँचना चाहता है। आत्मविश्लेषण की स्थिति तभी संभव है जब नीचे स्तर की मूलभूत आवश्यकताएँ उचित मात्रा में पूरी हों, इससे न ध्यान हटाया जाय और न ही सभी उपलब्ध ऊर्जा का कहीं और उपयोग किया जाए द्यव्यक्ति को अपने अस्तित्वपरक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उसे अपने परिवार समाज एवं कार्य से सम्बन्धित सम्बन्धों से संतुष्ट होना चाहिए।

अतः ऐसी आवश्यकताएँ जो हमारे दिमाग में आती है मास्लों ने उसे एक क्रमबद्ध रूप से बताने का प्रयत्न किया है। पहले स्वाभिमान की आवश्यकता तक पूरी होती है जब प्यार और अपनत्व की आवश्यकता से संतुष्टि होती है और जब बचाव और सुरक्षा की आवश्यकता से संतुष्टि होती है तभी प्यार एवं अपनत्व की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि यदि नीचे स्तर की मूल आवश्यकताओं पर यकायक कोई विपत्ति आती है तो तुरन्त उच्च स्तर की मूल आवश्यकता नीचे स्तर पर आ जाती है। उदाहरणार्थ– एक महिला जो यह सोचती है कि उसके पति को उसकी सहायता की बहुत आवश्यकता है उसने स्वयं को एक उच्च पति ने उसे छोड़ दिया। ऐसी परिस्थिति में व्यवसाय) तथा अपने पति को पुनः प्राप्त करने के प्रयास में ग्राहक प्रवृत्ति की हो जाती है अर्थात् उसकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करती है। एक बार वह जब इस सम्बन्ध में पुनस्थापित हो जाती है या उसका बेहतर विकल्प विकसित कर लेती है वह पुनः व्यावसायिक जगत में जुड़ जाने के लिए स्वतंत्र हो अपने आप सकेंद्रित हो जाती है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) मास्लो योजना में आवश्यकताओं की क्या विशेषता है?

.....

.....

.....

.....

4.5 बी.एफ.स्कीनर : व्यक्तित्व का व्यावहारवादी–शिक्षण का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

प्रत्येक सिद्धान्त में संरचनात्मक अवधारणाओं पर बल दिया गया है। सिग्मण्ड फ्रायड (जिसका अध्ययन आप अगले कई इकाई में करेंगे) ने संरचनात्मक अवधारणाओं में इंड, इगो, और सुपर इगो रोजर्स ने स्वयं एवं आदर्श स्वयं तथा मास्लों ने मानव की मूल आवश्यकताओं को उसके व्यवहार की संख्या कर अपना सिद्धान्त दिया है। स्कीनर दृष्टिकोण को व्यक्तित्व के व्यवहारवादी दृष्टिकोण के नाम से जाना जाता है, जो व्यक्तित्व के प्रक्रिया एवं स्थौतिक विशेष की अवधारणाओं को ध्यान में रखकर बताया गया है। संक्षेप में सिद्धान्त मान्यताओं पर आधारित होने के कारण अन्य सिद्धान्तों से भिन्न है, इसकी मुख्य विशेषताएँ चहले के दिए गए विचारों से अलग हैं।

स्कीनर का सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति का व्यवहार, कार्यों का कौशल तथा समाज में दण्ड पर आधारित प्रक्रिया है। व्यवहारवादी स्कीनर के उपागम को व्यक्तित्व के व्यवहारवादी दृष्टिकोण के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है तथा इसमें प्रमुख रूप से प्रक्रियाओं एवं परिस्थितिक विशिष्टताओं की अवधारणाओं पर जोर दिया गया है। सारांश रूप में चूँकि यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों से भिन्न मान्यताओं पर आधारित है, इसलिए इस सिद्धान्त की अविचारिक विशेषताएँ अभी एक अध्ययन किए गए सिद्धान्तों से भिन्न हैं।

स्कीनर का क्रियात्मक अनुबन्धन प्रक्रिया का आधार यह है व्यवहार पर नियंत्रण पर्यावरण के पुरस्कार एवं दण्ड के प्रबन्ध कौशलों के माध्यम से होता है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण की सबसे संरचनात्मक इकाई प्रत्युत्तर है। प्रत्युत्तर की प्रकृति का प्रसार एक सरल प्रत्यावर्तन जैसे भोजन के लिए लार स्राव से एक जटिल व्यवहार के टुकड़ें जैसे एक अंकगणित योग्य व्यवहार के टुकड़ें का प्रतिनिधित्व करता है जो पर्यावरणीय घटनाओं से सम्बन्धित हो सकता है। जानकार उत्तेजक द्वारा चयनित प्रत्युत्तर तथा ऐसे उत्तेजक जो किसी उद्दीपक से सम्बन्धित नही हैं के प्रत्युत्तरों में भिन्नता पायी जाती है। बाद के श्रेणी में जीव द्वारा दिए गए प्रत्युत्तर दिये जाते हैं तथा ये प्रकृति से जैविकीय होते हैं। उदाहरणार्थ कुत्ता दौड़ता है या चलता है। स्कीनर का विचार था कि पर्यावरण उद्दीपक जीव को व्यवहार के लिए बाध्य नहीं करता है। क्रियाएँ जीव द्वारा स्वयं प्रदर्शित होती है तथा क्रियाशील व्यवहार के लिए कोई पर्यावरणीय उद्दीपक नहीं होता है, यह सामान्तय होता है।

क्रियात्मक अनुबन्ध की अनिवार्यता इस तथ्य पर आधारित होती है कि सभ स्थितियाँ समान हों तो पुनर्बलित व्यवहार का देहरा होगा। पुनर्बलन की अवधारणा का स्किनर के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण भूकिा है। स्किन के अनुसार एक प्रबलक एक उद्दीपक हैं जिसके पश्चात् प्रत्युत्तर होता है तथा किसी घटना की संभावना बढ़ जाती है। यदि कुत्ता एक गेंद पकड़ता है, जो क्रियात्मक व्यवहार का एक टुकड़ा है तथा प्रत्युत्तर के पश्चात् पीठ थपथपाना या किसी अन्य पुरस्कार के रूप में उसे पुनर्बलन प्राप्त हो तो कुत्ते के गेंद पकड़ने की संभावना बढ़ जायेगी। अतः एक पुनर्बलन किसी व्यवहार की पुनरावृत्ति को शक्तिशाली बनाता है। स्कीनर के अनेसार कुछ उद्दीपक सभी पशुओं के व्यवहारों के लिए पुनर्बलक होते हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण हैं कि एक प्रबलक उसके व्यवहार के प्रभाव के रूप में परिभाषितकिया जा सकता है अर्थात् प्रत्युत्तर के संभावना में वृद्धि तथा इसे केवल सैद्धान्तिक रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। अक्सर यह जानना कठिन है कि कौन ठीक ढंग से व्यवहार का प्रबलक होगा, क्योंकि यह व्यक्ति या वर्यावरण–पर्यावरण में भिन्न–भिन्न हो सकता है।

अतः इस दृष्टिकोण में केन्द्र प्रत्युत्तर के गुणों तथा उसके दरों तथा समय अन्तरालों के जिसके वे प्रबलिक होते हैं, पर हैं प्रबलक के समय एवं दर सम्बन्धों को प्रबलक की

अनुसूचियाँ भी कहते हैं इस समय–दर सम्बन्धों के अध्ययन हेतु सिनर ने एक सरल उपकरण विकसित किया जिसे सामान्यतया स्कीनर के बाक्स के रुप में जाना जाता है। इस बक्से में कुछ उद्दीपक एवं व्यवहारों/प्रत्युत्तरों (जैसे चूहे द्वारा बटन दबाना या कबूतर द्वारा गोल थाल पर चोंच मारना) का एक वस्तुनिष्ठ ढंग से अवलोकन किया जाता है। इसमें कोई भी व्यक्ति व्यवहार के मूलभूत नियमों का सर्वश्रेष्ठ अवलोकन कर सकता है। स्कीनर के अनुसार व्यवहार को सर्वश्रेष्ठ ढंग से तभी समझा जा सकता है जब यह नियन्त्रित होता है। व्यवहार पर नियन्त्रण प्रत्युत्तरों के चयन प्रबलित होते हैं तथा वह दर जिस पर वे प्रबलित होते हैं के द्वारा किया जा सकता है। प्रबलन की अनुसूची का उपयोग एक निश्चित समय अन्तराल या एक निश्चित प्रत्युत्तरों के अन्तराल पर किया जा सकता है। एक समय अन्तराल अनुसूची में प्रबलन एक निश्चित अवधि जैसे एक मिनट के बाद होता है, वह प्राणी के द्वारा दि गए प्रत्युत्तरों की सख्या

अतः प्रत्येक प्रत्युत्तर पर प्रबंलन देने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन यह निश्चित अवसरों पर दिया जा सकता है। प्रबलन एक नियमित या निश्चित आधार पर दिया जा सकता है– सदैव एक निश्चित संख्या के प्रत्युत्तरों पर, या सहचर के आधार दिया जा सकता है– कभी–कभी एक मिनट के बाद तथा कभी–कभी दो मिनट बाद या कभी–कभी कुछ प्रत्युत्तरों के बाद तथा कभी–कभी बहुत से प्रत्युत्तरों के बाद।

इसी प्रकार, जटिल व्यवहार क्रमिक सन्निकटन की प्रक्रिया के माध्यम से आकार धारण करता है। अर्थात् जटिल व्यवहारों का विकास व्यवहार के टुकड़ों के प्रबलन, जो एक व्यक्ति के उन अन्तिम के स्वरूप जिसका अभ्यास वह करना चाहता है द्वारा होता है। इसकी व्याख्या एक उदाहरण के द्वारा की जा रही है।

मान लीजिए हम स्कीनर बक्से के अन्दर के एक गोल थाल पर एक अप्रशिक्षित कबूतर द्वारा चोंच मारने का व्यवहार विकसित करना चाहते है। हम इस व्यवहार को आकार देने का क्रमिक सन्निकटन की प्रक्रिया द्वारा करते है। अर्थात् कबूतर एक पूर्ण एवं सही चोंच मारने का प्रत्युत्तर करें, के स्थन पर हम पहले कबूतर के कुछ व्यवहार का प्रबलन करते हैं जो उसके थाल पर चोंच मारने वाले अन्तिम व्यवहार को निर्मित करता है। इसलिए कबूतर जब भी थाल की दिशा में जाएगा हम उसे प्रबलन देंगे। जब कबूतर में स्थापित थाल में दिशा में जाने की एक निश्चित प्रवृत्ति हो जाती है तब तक हम प्रबलन को जारी रखेंगे। यह कार्य उन प्रत्युत्तरों को प्रबलित करके होगा जो कबूतर को थाल के और अधिक नजदीक लाए तथा इसके बाद वे प्रत्युत्तर रहे जो उसके चोंच को थाल के करीब जाएँ। इसी प्रकार अन्त में हम इस योग्य हो जाते हैं कि कबूतर को थाल पर चोंच मारने के लिए बाध्य कर सकें।

इसी प्रकार मनुष्यों में भी क्रमिक सन्निकटन द्वारा जटिल व्यवहार विकसित किए जा सकते हैं। इन सभी प्रकार के शिक्षण में सबसे अधिक जोर सकारात्मक पुनर्बलन जैसे भोजन, धन प्रशंसा के उपयोग पर होता है। स्कीनर ने नकारात्मक पुनर्बलन के महत्व पर भी जो दिया है। एक सकारात्मक पुनर्बलन प्रत्युत्तर को बनाये रखने या मजबूत करने हेतु अवसर मिलते ही समाप्त कर देंगे। उदाकरण के लिए आलोचना, अस्वीकृति, मित्र समूह द्वारा अस्वीकृत होना, आदि नकारात्मक प्रबलन के रूप हैं।

एक नकारात्मक प्रबलन के साथ दण्ड का भ्रम कभी–कभी रह जाता है किन्तु ये दानों भिन्न है। नकारात्मक प्रबलन दुखदायी परिस्थितियों को समाप्त करने हेतु प्रत्युत्तर करने पर बल देता है। दण्ड प्रत्युत्तर के बाद होता है तथा व्यक्ति में दण्ड के बाद प्रत्युत्तर के आवृत्ति में कमी आती है। उदाहरण के लिए यदि व्यवहार अस्वीकृति या तिरस्कार होता है, एक व्यक्ति के प्रयासों के बाद उसे दण्ड प्राप्त हो तब यह कहा जा सकता है कि नकारात्मक प्रबलन का उपयोग हुआ।

अतः हम देखते है कि स्कीनर के सिद्धान्त में सबसे अधिक ध्यान व्यावहारिक परिवहन दृष्टिकोण एवं परिवर्धन पर केन्द्रित किया गया है व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में इसकी व्यावहारिकता सबसे अधिक प्रासांगिक है।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।?

1) वी.एफ. स्कीनर द्वारा उपयोग किए गए क्रियात्मकता (Operant) से आप क्या समझते है?

.....

.....

.....

.....

4.6 सारांश

इस इकाई द्वारा आप व्यक्तित्व के चार सिद्धांतों जो एरिक्सन, रोजर्स, मास्लो एवं स्कीनर ने दिए हैं, से परिचित हो गए होंगे।

एरिक्सन ने मानव जीवन चक्र के आठ अवस्थाओं के क्रम का प्रारूप दिया। प्रत्येक अवस्था एक संकट से जुड़ी होती है जो कि व्यक्तिगत जीवन का महत्वपूर्ण समय होता है जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक परिपक्वता एवं सामाजिक माँग व्यक्ति द्वारा इन अवस्थाओं में की जाती है। प्रत्येक मनोसामाजिक संकट में सकारात्मक एवं नकारात्मक तत्व सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक संकट का सुल समाधान मनोसामाजिक शक्ति या गुण से सम्बद्ध होता है।

व्यक्तित्व के रोजर्स सिद्धांत में स्वयं (self) सबसे महत्वपूर्ण होता है। 'स्वयंश व्यक्ति के दृश्य प्रपंच या प्रात्यक्षिक (Pereeopted Field) से भिन्न एक हिस्सा है जिसे अअनुभवों की संपूर्णता कहा जा सकता है। 'स्वयंश चेतनात्मक प्रत्यक्षीकरण दर्शाता है और श्मैश और श्मुझेश का अर्थ बताता है। आदर्श आत्म (स्वंय) उस आत्म संप्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता है जैसा व्यक्ति सबसे अधिक पसन्द करता है। एक व्यक्ति समायोजित परिपक्व एवं पूर्ण कार्यशील तक कहा जाता है जब उसके चेतन अनुभव जो उसके आत्म का निर्माण करते है पर्यावरणीय अनुभवों को प्रर्दशित करते है। अतः यह कहना कि व्यक्ति समायोजित है तब उसके विषयात्मक वास्तविकता (दृश्य प्रपंच क्षेत्र) तथा वाह्य वास्तविकता (जैसा विश्व है) के बीच समानता होनी चाहिए। जबकि इसके विपरीत स्थिति में (पर्यावरण एवं आत्म के बीच असमानता) व्यक्ति को चिन्तित तथा परेशान करता है।

अब्राहम मास्लो के व्यक्ति का सिद्धांत आवश्यकता के सोपानों पर आधारित है। सुरक्षा की आवश्यकता दैहिक आवश्यकता के बाद की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। तीसरे आवश्यकता के रूप में अपनत्व एवं प्यार होता है। स्वाभिमान की आवश्यकता अपने एवं अन्य लोगों के लिए स्वाभिमान चौथे क्रम पर आती है। सबसे उच्च आवश्यकता मास्लों द्वारा आत्म विश्लेषण बतायी गयी है।

बी.एफ. स्कीनर ने मानव व्यक्तित्व के वृद्धि एवं विकास के पुनर्बलन की सूची पर जोर दिया है। पुनर्बलन ऋणात्मक हो सकता है और धनात्मक भी। पुनर्बलन के न्यायिक उपयोग के

द्वारा व्यवहार के अंतिम स्वरूप को उत्पादित किया जा सकता है और यह पशु प्रशिक्षकों द्वारा किया जा सकता है। यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि मानव व्यवहार का प्रबंध पर्यावरणीय परिस्थितियों के द्वारा किया जा सकता है।

4.7 शब्दावली

स्वायत्तता : इस बात की आन्तरिक चेतना कि व्यक्ति आत्म नियंत्रित व्यक्ति है उसे उन घटनाओं जो उसके जीवन को प्रभावित करती है उस पर कुछ प्रभाव डालने में उसे सक्षम बनाता है।

मूल विश्वास : इस बात की आन्तरिक सोच कि व्यक्ति का सामाजिक जगत सुरक्षित एवं स्थिर है तथा दूसरों द्वारा उसकी देखभाल विश्वसनीय एवं पौष्टिक है।

व्यवहारवाद : मनोविज्ञान का एक संप्रदाय जो यह विश्वास करता है कि केवल मनोविज्ञान ही व्यवहार के अवलोकन एवं मापन हेतु मान्यता प्राप्त विषय है।

देखभाल : वह मनोसामाजिक गुण जो आनुवंशिकता से बढ़ता है तथा व्यक्ति को किसी के तथा किसी मामले में अनुभव करने में सक्षम बनाता है।

उपयुक्तता : समता या समन्वय की एक स्थिति जो तब होती है जब व्यक्ति के अनुभवो तथा उसके आत्म संप्रत्यय के बीच कोई भिन्नता या असंगति नहीं होती हैं।

चेतन : जिन विचारों एवं भावनाओं के प्रति व्यक्ति प्रत्येक समय जागरुक होता है।

ईमानदारी : वह मनोसामाजिक गुण जो एक युवा व्यक्ति को आदर्श के परिप्रेक्ष्य में उसके विरोध एवं सीमाओं के बावजूद प्रत्यक्षीकरण करने तथा क्रिया करने में सक्षम बनाता है।

आनुवंशिकता : यह अगली पीढ़ी के कल्याण तथा उस समाज के प्रकार जिसमें वह पीढ़ी निवास करती तथा कार्य करेगी से संबंधित विचार परावर्तित करता है।

आवश्यकताओं का सोपान : उच्च और निम्न आवश्यकताओं का उनकी क्षमता के अनुसार क्रमबद्धीकरण।

आदर्श स्वयं : यह व्यक्ति क्या सेचता है कि वह क्या हो सकता है और क्या होना चाहिए। इसमें आकांक्षाएँ, नैतिक आदर्शों तथा मूल्यों को सम्मिलित किया जाता है।

अनुउपयुक्तता : असमता की वह स्थिति जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति के अनुभवों तथा उसके आत्म सप्रत्यय के बीच कोई भिन्नता होती है।

दृश्यप्रपंचशास्त्र : एक दृष्टिकोण जो व्यक्ति के विषयात्मक अनुभवों, विचारों की समझ के महत्वों पर जोर देने के साथ

ही साथ विश्व तथा आत्म के प्रति उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोणें पर भी जोर देता है।

मनोविश्लेषण : व्यक्तित्व संरचना एवं विकास से संबंधित फ्रायड द्वारा विकसित सिद्धांत। यह सिद्धांत व्यवहार के निर्धारण में जैविकीय तथा अचेतन कारकों की भूमिका पर अत्यधिक बल देता है।

प्रबलन : एक संघ जो क्रियात्मक प्रत्युत्तर के पश्चात् पुनर्बलन उद्दीवन होने पर निर्मित होता है।

आत्म विश्लेषण : एक इच्छा कि व्यक्ति में जो बनने की क्षमता है वह सभी बनना। ऐसे प्रकारका व्यक्ति बनना जैसा व्यक्ति बनना चाहता तथा इसी कारण एक अर्थपूर्ण जीवन जीना।

स्वाभिमान आवश्यकता : व्यक्तिगत रूप से मूल आवश्यकताओं से प्ररित होकर दूसरों से पहचान एवं सम्मान पाना

स्वाधारणा : स्त्री/पुरुष के विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत अवधारणाएँ।

अचेतन : यह मन का पक्ष होता है जिसमें अनपेक्षाकृत संघर्ष एवं इच्छा होती है। यह चेतन मन द्वारा कुछ प्रविधियों जैसे स्वतंत्र, सहचर एवं स्वप्न की व्याख्या से प्रायोजित हो सकती है।

4.8 कुछ एपयोगी पुस्तके

प्रवीन, लारेन्स (1984), *ए परसोनैलिटी थ्योरी एण्ड रिसर्चक्र*, जॉन विले एण्ड सन्स इन, न्यूयार्क

हजेले, लैरी, (1981), ए एण्ड जिगलेर डामिल जे.: *परनसोनैलिटी थ्यूरीज*, मैग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यू देल्ही

हाल कैलविन (1998), एस. एण्ड लिन्डजे गार्डनेरः *थ्यूरीज ऑफ परसोनैलिटी*, जॉन विले एण्ड सन्स इन, न्यूयार्क

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) अब जबकि व्यक्ति एक बालक नहीं रहता न ही वह प्रौढ़ उसे विभिन्न सामाजिक अपेक्षाओं एवं भूमिका परिवर्तनों के साथ संघर्ष करना पड़ता है। एक तरफ तो उससे स्वयं को एक प्रौढ़ जीवन के प्रारूप में ढल जाने की अपेक्षा की जाती है दूसरी तरफ उसे प्रौढ़ों की भाँति लैंगिक स्वायत्तता की अनुमति नही होती है। इसी अवधि के दौरान व्यक्ति अपनी व्यावसायिक योजनाओं का निर्णय करता है तथा वह यह भी निर्णय करता है कि भविष्य में क्या बनना चाहता है यह पहचान निर्माण की अवस्था होती है। फिर भी इसका अन्त व्यक्ति के पहचान क्रम के रूप में होता है जिसके कारण उसमें अकेलेपन, सूनेपन तथा अनिर्णय की भावना का उदय होता है।

बोध प्रश्न II

1) व्यक्ति विश्व को अद्वितीय तरीके से प्रत्यीकृत करता है। यह प्रत्यीकरण व्यक्ति के दृश्य प्रपंच क्षेत्र का निर्धारण करता है। दृश्य प्रपंच क्षेत्र के अन्तर्गत दोनों चेतन एवं अचेतन प्रत्यक्षीकरण सम्मिलित होते हैं। जिनके विषय में व्यक्ति जागरूक होता है तथा वे जिनके संबंध में वह जागरूक नहीं होता है। अतः दृश्य प्रपंच क्षेत्र निश्चित रूप से एक ऐसा विश्व होता है जो व्यक्ति के स्वयं के लिए व्यकितगत होता है। अर्थात् वह किस प्रकार सोचता, समझता है तथा विचार करता है अपने आंतरिक संदर्भ के रूपरेखा के विषय में। एक निश्चित क्षण में उसकी समस्त जागरूकता इसमें सम्मिलित है।

बोध प्रश्न III

1) सबसे निम्नतम स्तर पर सर्वाधिक मूल आवश्यकताएँ भू, प्यास, निंद्रा, काम होती है। दूसरे स्तर पर सुरक्षा, निश्चिंतता, क्रम एवं सुरक्षा की आवश्यकताएँ आती है। तीसरी श्रेणी आवश्यकताएँ है, ये आवश्यकताएँ आंतरिक संबंध निर्माण की आवश्यकताएँ है। जब ये आवश्यकताएँ संतुष्ट होती तक आत्म सम्मान की आवश्यकताओं का उद्य होता है। ये आवश्यकताएँ हैंरू आत्म आदर, आत्म सम्मान, स्वाभिमान एवं दूसरों के लिए आदर। मास्लों के आवश्यकताओं के अनुक्रम में सबसे ऊपर आत्म विश्लेषण पूर्वता या परिपूर्णता है।

बोध प्रश्न IV

1) स्कीनर ने ऐसे प्रत्युत्तरों जिनकी जानकारी उद्दीपक को होती है जैसे पलक झपकनार तथा ऐसे प्रत्युतरों जो उद्दीपक से सम्बद्ध नहीं होते के बीच विभेद किया है। बाद वाले प्रत्युतर जो जीव द्वारा किए जाते हैं उसे क्रियात्मकता कहते हैं। अतः क्रियात्मकता कोई वाझ कारण नहीं होता। उदाहरणार्थ के लिए एक कुत्ता दौड़ता हैं, टहलता है, बच्चा हँसता है, रोता है तथा बलबलाता है और पक्षी उड़ते है। अतः क्रियात्मकता जीव के जैविक स्वरूप में उपस्थित होते हैं।

इकाई 5 मनोलैंगिक विकासः फ्रायड की अवधारणा

रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 लैंगिकता की अवधारणा

5.3 मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाएँ

5.4 स्थिरीकरण

5.5 व्यक्तित्व के विकास के लिए मनोलैंगिक अवस्थाओं का महत्व

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को, वियन्ना के शोधर्थियों द्वारा प्रस्तावित सिगमण्ड फ्रायड द्वारा प्रदत्त मनोलैंगिक विकास के सिद्धांत की अवधारणा के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत, फ्रायड के अनुसार लैंगिकता की अवधारणा, मनोलैंगिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ, विभिन्न अवस्थाओं में स्थिरण तथा मानव व्यक्तित्व के लिए ऋऋमनोलैंगिक विकास के महत्व का इस इकाई के अन्तर्गत विवरण दिया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- लैंगिकता की अवधारणा उस रूप में समझें जैसा की फ्रायड ने समझा है उसे जान सकेंगे;
- मनोलैंगिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं को सूचीबद्ध कर सकेंगे;
- विकास की प्रत्येक अवस्था में गतिशीलता का वर्णन कर सकेंगे;
- स्थिरण की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रत्येक अवस्था की समीक्षा कर सकेंगे; और
- मानव विकास को समझने में मनोगतिशीलता के सैद्धांतिक संरचना के महत्व को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

मनोलैंगिक विकास के सिद्धांत जो लिबिडिनल विकास के सिद्धांत के रूप में भी जानी जाती है, पूर्व के सिद्धांतों में से एक है जो यह स्पष्ट करता है कि मानव में व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है। इस सिद्धांत के अन्तर्गत संवेगात्मक रूप में विक्षित लोगों के साथ

की गई फ्रायड के नैदानिक शोध का परिणाम निहित है। मनोलैंगिक विकास का सिद्धांत फ्रायड द्वारा प्रस्तावित मनोगतिशीलता व्यक्तित्व सिद्धांत का समेकित अंग है। प्रायः फ्रायड को प्रथम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तदाता के रूप में माना जाता है जिसने विकाससत्मक पक्ष पर बल दिया है तथा शैशवाकाल एवं बाल्यावस्था के दौरान प्रारम्भिक अनुभवों को प्रौढ़ व्यक्ति की आधारभूत चरित्र संरचना में निर्णायक बताया है।

फ्रायड के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन अवधि में गतिशील–विभेदित विकासात्मक अवस्थाओं की एक श्रृंखला से गुजरता है। जो प्रकार्यात्मकता के स्पष्ट माध्यम द्वारा लक्ष्य वर्णित है। विभिन्न अवस्थाओं के दौरान विशेषकर प्रारम्भिक बाल्यावस्था में हुए आघात मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मानसिक विक्षप्ति कारण के कारकों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका व निभाती है। सांवेगिक रूप से अशांत व्यक्तियों के अपने प्रारम्भिक शोध पर आधारित तथ्यों में फ्रायड ने पाया कि प्रौढ़ावस्था के दौरान पाए जाने वाले मानसिक समस्याओं के लक्षण कामुक–प्रवृत्ति की कुण्ठा से सम्बन्धित होते है। इस प्रकार की कुण्ठा प्रायः जीवन के प्रथम वर्ष में होती है तथा सम्पूर्ण बाल्यावस्था के दौरान चलती रहती है। फ्रायड ने इस प्रकार इस विश्वास का नेतृत्व किया कि बच्चे कामुक–अन्तःप्रेरणा की अभिव्यक्ति प्रदर्शित करते हैं तथा यह कि व्यक्तित्व सम्बन्धी कोई भी सिद्धांत शैशवकालीन कामुकता का अवश्य दृष्टिगत रखें।

5.2 लैंगिकता की अवधारणा

फ्रायड के अनुसार लिंग व्यक्ति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवन–प्रवत्ति है। उनके अनुसार कामुक इच्छाओं को बढ़ाने वाली अनेक शारीरिक आवश्यकताओं के केन्द्र बिन्दु के रूप में लिंग प्रवृत्ति होती है। इनमें से प्रत्येक इच्छाओं की उत्पत्ति विभिन्न शारीरिक क्षेत्रों से होती है। जिसे कामोतेजक क्षेत्र से संदर्भित किया जाता है। कामोतेजकदृक्षेत्र त्वचा अथवा श्लेष्मा–कला का अंग होता है। जो क्षोभ के प्रति अत्यन्त संग्राही होता है तथा जब क्षोभ को विशिष्ट तरीके से दूर करने के लिए प्रयास किया जाता है तब आनन्ददायक भावनाएं व अनुभव होता है। होंठ और मुँह, गदा क्षेत्र तथा लिंग–अंग कामोतेजक क्षेत्र के उदाहरण है। अतः चूषण मुखानन्द उत्पन्न करता है, गुदा आनन्द देता है तथा रगड़ना जनांनगी आनन्द देता है। संक्षेप में फ्रायड लैंगिक प्रवृत्ति को पनोदैहिक प्रक्रिया मानते हैं जो मानसिक एवं शारीरिक दोनों अभिव्यक्ति रखता है। इसके लिए विशिष्ट पद (लिबिडो) कामलिप्सा का प्रयोग किया है जो एक शक्ति है जिससे मन में लैंगिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व होता है।

सार स्वरूप, फ्रायड ने लैंगिकता पद को व्यक्ति के लैंगिक जीवन के संदर्भ में उपयोग किया है। उनके अनुसार लैंगिकता केवल प्रौढ़ों का मामला ही नहीं है वरन शिशुओं से भी सम्बन्धित है। यह पूर्ण प्रसरणीय है तथा वे समस्त क्रियाएँ एवं संवेदना इसके अन्तर्गत आती हैं जो आनन्ददायक व इन्द्रिय–तृष्टि के लिए होती हैं। फ्रायड ने यह देखा कि जन्म से ही शिशु लैंगिक क्रियाओं के लिए सक्षम होते हैं। शैशवाकालीन लैंगिकता की प्रारम्भिक तुष्टि शारीरिक क्रियाकलापों के सम्बन्ध में उत्पन्न होती है जैसे– आहार ग्रहण करना तथा शौच आदि निष्पादन। फ्रायड की समस्त अवधारणाएँ जिनको लेकर वह शिशुओं एवं युवा बालकों के लैंगिक जीवन के संदर्भ में आगे बढ़े उसकी विभिन्न दिशाओं से कटु आलोचना की गई।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) सिगमण्ड फ्रायड द्वारा उद्धत लैंगिकता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कामोतेजक क्षेत्रों से आप क्या समझते हैं? मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाओं के सिद्धांत में उद्धत इन क्षेत्रों के नाम इंगित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाएँ

जीवन प्रवृत्ति की स्थिर क्रियाओं के माध्यम से व्यक्तित्व विकास सम्पन्न होता है। एक व्यक्ति में लिंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवन प्रवत्ति है, जीवन प्रवृत्ति को सक्रिय बनाने के लिए विभिन्न लैंगिक क्रियाओं का होना अनिवार्य होता है। लिंग एक जैविक प्रवृत्ति है, जिसे पारितोषित करने की आवश्यकता होती है। इसको रोकने या बचाने से तनाव उत्पन्न होता है तथा जब इसको पूर्ण किया जाता है तो संतोष की प्राप्ति होती है। लैंगिकता की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति शारीरिक क्रियाओं के सम्बन्ध में दिखायी देती है जो मूल रूप से लैंगिक नहीं होती जैसे– दूध पीना शरीर से अनुपयोगी तत्वों का निरसन करना। प्रत्येक व्यक्ति जीवन के प्रथम पांच वर्षों के दौरान अवस्थाओं की एक श्रृंखला से गुजरता है तदोपरान्त पाँच या छः वर्षों की अवधि की गतिशीलता कम या अधिक स्थिर हो जाती है। किशोरवस्था आने पर गतिशीलता पुनः प्रारम्भ होती है तथा तब किशोरवस्था की प्रगति के रूप में प्रौढ़ावस्था की अवस्था में स्थिर हो जाती है। फ्रायड के लिए जीवनर के प्रथम पांच वर्ष व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णायक होते हैं।

प्रत्येक मनोलैंगिक अवस्था शरीर के विशिष्ट क्षेत्र की प्रतिक्रिया के तरीके के संदर्भ में परिभाषित की जाती है। नवजात शिशु के जीवन के प्रथम 18 महीनों के दौरान मुख गतिशील क्रिया के प्रमुख क्षेत्र के रूप में कार्य करता है। इसी कारण इस अवस्था को मुखकामावस्था कहा जाता है। मुख–कामावस्था के दौरान निरसन प्रकार्य के क्षेत्र से आनन्द की प्राप्ति होती है इसी कारण इसे मुखकामावस्था कहा जाता है। यह आगे 18 महीने तक

चलता है तथा इसके बाद शैशवावस्था स्थान ग्रहण करती है। जिसमें यौनांग लैंगिक/कामुक क्षेत्र के रूप में नेतृत्व करते हैं। इन अवस्थाओं के दौरान, मुख की श्लेष्मा–कला, गुदा तथा वाहय जननेद्रिय, विकास की अवस्था के आधार पर बच्चे की कामोतक जीवन का केन्द्र बिन्दु बन जाते हैं। पाँचवे वर्ष के अन्त में बच्चा काम प्रसुप्ति अवस्था में प्रवेश करता है जहाँ कामदृअन्तःप्रेरण अवदमन की स्थिति में रहता है। किशोरवस्था के प्रारम्भ होने के साथ जननेद्रिय–पूर्व आवेग पुनः सक्रिय हो जाते हैं तथा व्यक्ति विकास की जननांगी अवस्था में प्रवेश करता है। इन अवस्थाओं के सम्बन्ध में हम विस्तार से अध्ययन करेंगे।

मुखकामावस्था

यह अवस्था शिशु में जन्म से लेकर 18 महीनों तक मानी जाती है। इस अवस्था में आनन्द प्राप्ति का मुख्य साधन चूषण होता है। चूषण में मुख का स्पर्श–उद्दीपन साथ ही साथ निगलना निहित होता है। बाद में जब दांत विस्फुटित होता है बच्चा मुख को काटने तथा चबाने के लिए उपयोग करता है जैसा कि बच्चा प्राथमिक रूप से आनन्द प्राप्त करने से सम्बद्ध होता है, वह आवश्यकताओं का परितोषण तुरन्त चाहता है। आनन्द प्राप्त करने में शिशु की आवश्यकता माता के स्तनपान में चूषण करने द्वारा पर्याप्त रूप से पूर्ण होती है क्योंकि कामोतेजक अन्तनोंद मुख में स्थित होता है। जैसा कि इस अवस्था में आवश्यकताओं का परितोषण माता पर निर्भर होता है, वह बच्चे के लिए प्यार का प्रथम पात्र होती है। माता के स्तन का आभास करना युवा बच्चे के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इसी कारण, मनोविश्लेषण के अन्तर्गत जन्म से लेकर लगभग 8 मास की अवस्था को मुख–चूषण अवस्था कहा जाता है। दांतों के विकास के साथ बच्चा अपने विकास की नई अवस्था में प्रविष्ट होता है जिसे मुख द्वारा काटने की अवस्था कहा जाता है। मुख द्वारा काटने की अवस्था के दौरान आनन्द प्राप्ति की विधि परिमार्जित हो जाती है। इसका साधन काटने के साथ ही साथ चूषण व निगलना भी होता है। ऐसा सुनिश्चित है कि मौखिक क्रियाओं की दो विधियाँ हैं अर्थात चूषण व निगलना तथा काटना/चबाना, बाद में विकसित होने वाले अनेक विशेषज्ञों के लिए आदि प्रारूप है।

गुदा कामावस्था

यह अवस्था तब प्रारम्भ होती है जब शिशु लगभग डेढ़ वर्ष की आयु का होता है, और उसके तीन वर्ष के होने पर समाप्त होती है।

गुदा कामावस्था की प्रारम्भिक अवस्था के दौरान उत्सर्जन की आनन्दायक संवेदना होती है तथा बाद में मल के अवधारणा के माध्यम से गुदा–श्लेष्मा की कामोत्तेजक संवेदना होती है। यह अवस्था दो उपदृअवस्थाओं जैसे गुदा निष्कासी अवस्था तथा गुदा अवधारण अवस्था में विभक्त है। गुद निष्कासी चरण मुख कामावस्था की समाप्ति के साथ मिश्रित होती है। यहाँ शिशु के लिए आनन्द प्राप्ति की विधि मल निष्कासन है। मल निष्कासन कष्ट को समाप्त करता है और आराम की भावना उत्पन्न करता है। जब स्वच्छता प्रशिक्षण प्रारम्भ किया जाता है शिशु सहज प्रवत्तिक आवेग के वाहा नियम के साथ प्रथम अनुभव करता है। शिशु उस आनन्द को स्थागित करना सीखता है जो गुदा तनाव दूर करने से होता है। गुद अवधारण अवस्था के दौरान शिशु की अपेक्षा की जाती है किवह स्वच्छता प्ररिशक्षण की माँग पूरी करे। शिशु को सीखना होता है कि वह निष्कासन के बजाएँ अवध गरण से आनन्द अर्जित करे। माता द्वारा स्वच्छता प्रशिक्षण विशिष्ट विधि के उपयोग तथा शिशु की सम्बन्धित भावनाओं पर निर्भर होता है कि स्वच्छता प्रशिक्षण के परिणाम, विशिष्ट व्यक्तित्व विशेषक एवं मूल्यों के सृजन में दूरगामी प्रभाव डालते हैं।

शैशनावस्था

यह अवस्था तब प्रारम्भ होती है जब बच्चा तीन वर्ष की अवस्था का हो जाता है और तब तक चलती रहती है जब तक वह पाँच वर्ष का न हो जाय । इस अवस्था के दौरान बच्चे में लिंग सम्बन्धी प्रारम्भिक बातें देखी जा सकती हैं। बच्चा अपने काम–अंगों से खेलता है और तनावमुक्त होता है तथा आनन्द की प्राप्ति करता है। कामोत्तेजक क्रियाएँ प्रारम्भिक रूप से मूत्र निरासन से सम्बन्धित क्रियाओं एवं संवेदनाओं के साथ मनोवैज्ञानिक व शारीरिक रूप से संबंद्ध होती है। मूत्र निरासन एक महत्वपूर्ण क्रिया है क्योंकि यह बच्चे को अपने यौन सम्बन्धी अस्तित्व के समाकलन में सहायता करती है। एक लड़का समझता है कि वह लड़का है और इसी प्रकार एक लड़की समझती है कि वह एक लड़की है, प्रारम्भिक दौर में ऐसा मूत्र निरासन की प्रक्रिया से होता है।

शैशनावस्था के विकास के दौरान जनन–अंगों के प्रकार्यों से संबंध लैंगिक भावनाएँ केन्द्र बिन्दु होती है। जननांगों के साथ खेलने एवं बच्चे को काल्पनिक जीवन से आनन्द प्राप्त होता है तथा लड़कियों एवं लड़कों में क्रमशः इडिपस एवं एलेक्ट्रा मनोग्रन्थि के प्रदर्शनार्थ अवस्था निश्चित होती है। यूनान के राजा थोबिस के नाम पर इडिपस–मनोग्रन्थि नाम दिया गया है जिसने अपने पिता की हत्या कर अपनी माता से विवाह किया था। इडिपस मनोग्रन्थि के अन्तर्गत पुत्री का पिता से तथा पुत्र का माता से यौन सम्बद्धता होती है तथा समान यौन के अभिभावकों के प्रति शुत्रता की भावना होती है। पुत्र माता पर अपना अधि पत्य जमाना चाहता है और पिता को हटाना चाहता है। एलेक्ट्रा मनोग्रन्थि के अनुसार पुत्री पिता पर अधिकार जमाना चाहती है और माता को हटाना चाहती है। ये भावनाएँ हस्तमैथुन की क्रिया के दौरान बच्चे की कल्पनाओं में अपने आप प्रदर्शित होती हैं। शैशनावस्था की मुख्य घटना के रूप में इडिपस एवं एलेक्ट्रा मनोग्रन्थियों की उपस्थिति विचारणीय है।

इडिपस ग्रन्थि के अन्तर्गत पुत्र में माता के प्रति अगम्यगमन चाहत तथा पिता के प्रति विरोध की धारणा विकसित होती है। वह कल्पना करता है कि उसका पिता उसे हानि पहुँचाने जा रहा है। इस भय को पिता का कटु एवं विरोधी व्यवहार सत्यापित कर सकता है। उसका भय इस बात से सम्बन्धित होता है कि उसका पिता उसके प्रति क्या कर सकता है, यह जननांगों पर केन्द्रित हाता है क्योंकि ये अंग माता से सम्बद्धता का साध न होता है। वह डरता है कि पिता अलग कर देगा। शिशनलोप का भय बच्चे को इडिपस मनोग्रन्थि को दूर करने में सहायता करता है क्योंकि वह अपना जननांग को खोना नहीं चाहता। शिशनलोप–दुश्चिन्ता माता के लिए कामेच्छा के दमन को उत्पन्न करता है तथा पिता के प्रति शत्रुता का भाव उत्पन्न करता है। यह पिता के साथ तादात्म बनाने में भी सहायता करता है। पिता के साथ तादात्म करके बालक माता के प्रति कामुक भावना को हानिरहित स्नेहपूर्ण भावना में बदल देता है। इपिडस मनोग्रन्थि, शैशवाकालीन कामुकता के विकास के चरम का प्रतिनिधित्व करता है।

एलेक्ट्रा मनोग्रन्थि में लड़की अपने प्यार की वस्तु का आदान–प्रदान एक नई वस्तु के रूप में पिता से करती है। लड़की में यह बात तब उत्पन्न होती है जब वह यह खोज निकालती है कि उसके पास लड़के की तुलना में कम क्षमता (साधन) है क्योंकि उसके पास स्पष्ट जननांग–पेनिस नहीं होता। इस बात के लिए वह माता को उत्तरदायी मानती और उनसे घणा करने लगती है कि वह लडकों की तलना में कम अंग के साथ उसे संसार में लायी है। वह अपना प्यार पिता को स्थानान्तरित करती है क्योंकि उसके मूल्यवान अंग है जिसे वह उसके साथ हिस्सेदारी करना चाहती है। लड़कों में शिशनलोप–दुश्चिन्ता का प्रतिरोधी पेनिस असूया है। एक लड़की वास्तविक अवरोधों को मान्यता देते हुए अपने पिता

के लिए आगम्यगमन सम्बद्धता को निश्चित करती है जो पिता के साथ यौन इच्छा की तृष्टि करने से बचाती है। फ्रायड के अनुसार इडिपस और एलेक्ट्रा मनोग्रन्थियों के निश्चय में भिन्नता दोनों यौनों में मनोवैज्ञानिक भिन्नता का आधार पर है।

काम प्रसुप्ति अवस्था

फ्रायड के अनुसार पाँच वर्ष की अवस्था के अन्त में शैशवाकालीन–कामुकता, सामाजिक परिणामों तथा यह सिद्ध होने पर कि उसके प्यार की वस्तु प्राप्त नहीं होगी धीरे–धीरे दब जाती है। लगभग पांच या छः वर्ष की आयु के दौरान बच्चा लैंगिक मामलों में सचेत रूप से सम्बद्ध नहीं रहता। जैसा कि काम प्रसुप्ति का साहित्यिक अर्थ इंगित करता है कि लैंगिक अन्तःप्रेरण इस अवस्था में छुपी रहती है। बच्चे की सक्रिय रूचि वाह्य जगत की ओर उन्मुख होती है। इस अवस्था के दौरान, लैंगिक अन्तःप्रेरण मनोरंजनात्मक, शैक्षिक एवं सामाजिक क्षेत्रों की ओर मुड़ जाती है। बच्चा समाज में व्यवहार करना सीखता है तथा अपना आदर्श प्राप्त करता है। कामोत्तेजकता अभिभावकों एवं मित्रों से संबद्धता के रूप में स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। विरोधी लिंग के प्रति रूचि निम्नतम हो जाती है। बच्चा अपनी सारी ऊर्जा अपने को प्रदर्शित करने एवं सिद्ध करने में व्यय करता है। बच्चे की ऊर्जा सक्षमता का संवेदन विकसित करने की दिशा में उन्मुख होती है। विकास की इस अवस्था के दौरान, बच्चे की लैंगिक अन्तप्रेरण बौद्धिक क्षेत्र के अन्तर्गत होती है। शैशनावस्था के उपरान्त व्यक्तित्व विकास के बारे में मनोविश्लेषण के पास बहुत कुछ कहने को बचाता है। कुछ भी हो यह विकास की आनुवाशिंक अवस्था को विश्लेषित करता है।

जननांगी अवस्था

यह अवस्था किशोरवस्था के प्रारम्भ के साथ शुरू होती है। जननांगी अवस्था के दौरान नई गहनता और अधिक परिपक्क स्वरूप लैंगिक भावनाएँ प्रदर्शित होती है। परिणामस्वरूप बच्चे का स्व–प्रेम उपयुक्त प्रतिरोधी लैंगिक सम्बन्धों की दिशा में बढ़ती है। लैंगिक आकर्षण, समाजीकरण, सामूहिक क्रियाएँ, व्यावसायिक योजना तथा विवाह की तैयारी और परिवार उत्पन्न करने की बातें प्रदर्शित होने लगती है। व्यक्ति एक आनन्द चाहने वाले, स्व–प्रेमी शिशु से वास्तविकता अनुस्थापित, समाजीकृत प्रौढ़ में परिवर्तित होता है। जननांगी अवस्था प्रमुख जैविकी कार्य पुनर्भिव्यक्ति है।

5.4 स्थिरीकरण (FIXATION)

स्थिरीकरण इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि पूर्व जननांगी विकास की विशिष्ट अवस्था के प्रति लैंगिक प्रवृत्ति की स्थाई सम्बद्धता विद्यमान होती है। केवल अन्तिम को छोड़कर किसी भी मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्था में ऐसा हो सकता है, विकास के इस क्षेत्र में बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वह एक विशिष्ट अवस्था के अन्त में एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्राकृतिक संचारिता लिए बच्चे को तैयार करते है। किसी एक विशिष्ट विकास तब इस अवस्था में अपने प्यार की वस्तु से सम्बन्ध मोहभंग कर दूसरी वचनबद्धता मगर पूर्णतः निश्चित नहीं, प्यार की वस्तु के प्रति सम्बद्धता प्रदर्शित करने की बच्चे की क्षमता, स्वस्थ्य व्यक्तित्व के विकास की अनिवायर्ता है। फ्रायड के निश्चयानुसार स्थिरण किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को विपरीत रूप से प्रभावित करता है। यह उल्लेखनीय है कि स्थिरीकरण का व्यावहारिक प्रदर्शन मनोलैंगिक विकास की अवस्था, जिसमें यह उत्पन्न होता है तद्नुसार फर्क होता है। उदाहरणार्थ, मुखकामावस्था में प्यार की वस्तु के रूप में माता के प्रति मोहभंग करने की बच्चे की अक्षमता अंगूठा चूसना, मदिरापान करना, सिगरेट पीना आदि जैसे व्यवहार को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार के

व्यावहारिक प्रतिमान मुखकामावस्था के प्यार की वस्तु के साथ कामुक सम्बद्धता को जारी रखने में व्यक्ति की सहायता करता है। इसी तरह वह होंठ एवं मुंह के कामोत्तेजक क्षेत्र के संवेदन में आनन्द प्राप्त करता हैं इसी प्रकार स्थिरण गुदा, शैशना एवं कामप्रसुप्ति अवस्थाओं में भी उत्पन्न हो सकता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाओं को सूचीबद्ध करें। क्रमबद्ध रूप से इन अवस्थाओं की कालिक आयु के क्षेत्रों (सीमाओं) का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) इडिपस एवं एलेक्ट्रा मनोग्रन्थियों से आप क्या समझते हैं? बच्चा इनको किस प्रकार समाप्त करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्थिरण (Fixation) क्या है? मुखकामावस्था के स्थिरण (Fixation) का उदाहरण दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 व्यक्तित्व के विकास के लिए मनोलैंगिक अवस्थाओं का महत्व

हमारे व्यक्तित्व के अनेक विशेषज्ञों एवं व्यवहार प्रतिमानों की उत्पत्ति को जड़े मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं में होती हैं। मनोविश्लेषण के अनुसार प्रौढ़ व्यवहार शैशवकालीन मनोलैंगिक अवस्था का परिणाम होता हैं। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की यौन ऊर्जा विस्थापन, उदात्तीकरण एवं प्रतिक्रिया निर्धारण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से उनके व्यवहार में निहित होता है। उदाहरणार्थ किसी प्रौढ़ की लैंगिक अवस्थाएँ शैशना जननांगी की निरन्तरता के रूप में देखी जाती हैं। इसी प्रकार अत्यधिक स्वच्छता या प्रशासन एवं नियमितता पर अत्यन्त बल देना शैशवकालीन–मनोलैंगिकता की गुदा कामावस्था के प्रतिरोधी प्रतिक्रिया निर्धारण के रूप में माना जाता है। मनोलैंगिक जननांगी की प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक वृद्धि में से एक है। यह विभिन्न मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाओं के दौरान व्यक्ति के अनुभवों के आधार पर सामान्य या असामान्य व्यवहार की सीमा तक पहुंच सकता है।

मुखकामावस्था के दौरान विकसित व्यक्तित्व विशेषगुण

चूषण एवं निगलने की मुखकामावस्था की क्रियाएं अनेक चारित्रिक विशेषकों के लिए आदि प्ररूप हैं जो किसी के जीवन के आने वाले वर्षों के दौरान विकसित होती है। मुख समाकलन से आनन्द प्राप्त करना अन्य समाकलन के तरीकों के रूप में स्थानापन्न किया जा सकता है जैसे ज्ञानार्जन या अधिपत्य स्थापित करने से आनन्द प्राप्त करना। काटना या मुखाक्रोश तार्किकता या कटुता के रूप में स्थानान्तरित होती है। विभिन्न प्रकारों के स्थानान्तरण एवं उदात्तीकरण द्वारा साथ ही साथ प्रारम्भिक मुखीय आवेगों के विरूद्ध रक्षायुक्तियों द्वारा मुखीय प्राकार्य के प्रोटोटाइपिक तरीके, रूचियों, मनोवृत्तियों एवं चारित्रिक विशेषकों के विस्तृत नेटवर्क के विकास हेतु आधार प्रदान करते हैं।

जैसा कि मुखकामावस्था उस समय होती है जबकि शिशु पूर्णतः माता पर निर्भर रहता है मगर निर्भरता की भावनाएँ इसी अवस्था के दौरान उत्पन्न होती है। अगर माता बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में इस बिन्दु पर सफल होती है, तब निर्भरता 'आशा' का सद्गुण प्राप्त करने में अगुवाई करती है। आशा की भावना विश्वास द्वारा इंगित की जाती है कि बच्चे की आवश्यकताओं की देखरेख माता द्वारा सुचारू रूप से की जाती हैं। बच्चे का यह विश्वास माता के साथ विश्वसनीय तथा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करता है जो अन्ततोगत्वा जीवन के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है। इस अवस्था के दौरान बच्चे और माता के साथ पालन–पोषण एवं घनिष्ठ सम्बन्ध भावी जीवन में अन्य लोगों के साथ विश्वास एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध के लिए स्थिति निर्धारण करता है। माता के द्वारा अस्वीकरण या बच्चे द्वारा अवांछित कुण्ठा का अनुभव जो आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण होता है, भावी जीवन की निराशावादी बना सकता हैं। इस मुखावस्था में बच्चे का, उसके पर्यावरण में निर्णायक लोगों से सम्बद्धता तथा इन लोगों के प्रति प्यार या घृणा की भावनाएँ बच्चे में विकसित होती है। यदि इस अवस्था में बच्चे और माता के बीच आधारभूत रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है तो यह स्थिति भावी जीवन में दूसरों के साथ विश्वासनीय एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने का आधार निश्चित करेंगी। यदि आशावादी प्रारूपी है या व्यक्ति मुख चूषण मजबूती के साथ सुनिश्चित करता है, निराशावाद उन व्यक्तियों का विशेषक है जिन्होंने मुख से काटने की अवस्था की कुण्ठा को कभी भली–भांति समाप्त नहीं किया। इसके आधिक्य के मामले में यह निराशवाद पूरी तरह से सामान्य सीमाओं को पार कर देता है और मनोवैज्ञानिक सीमाओं को पार कर

लेता है और मनोवैज्ञानिक उदासीनता हो जाती है। इस प्रकार, यहाँ तक कि प्रथम वर्ष में व्यक्तित्व के कुछ चारित्रिक विशेषक स्थापित होते हैं।

गुदावस्था के दौरान विकसित व्यक्तित्व विशेषगुण

मनोविषलेषण के अनुसार गुदावस्था के दौरान अहम विकास पूर्ण हो जाता है। परिणामस्वरूप बच्चे में वास्तविकता संवेदन आनन्द प्राप्ति से आच्छदित होता है। मातृक देखरेख के साथ स्वच्छता प्रशिक्षण के कारण संघर्ष बच्चे के लिए आनन्द प्राप्ति की दिशा बदलता है। कुछ व्यक्तियों में बाधित स्वच्छता प्रायः गुदावस्था के प्रतिगमन के रूप में देखी जाती है। माता द्वारा स्वच्छता प्रशिक्षण के लिए उपयोग की गई विशिष्ट विधि तथा मलोत्सर्ग के संदर्भ में उसकी भावनाओं के आधार पर इस प्रशिक्षण का परिणाम विशिष्ट व्यक्तित्व विशेषकों के निर्धारण पर दूरगामी प्रभाव डाल सकता है। यदि माता बच्चे के लालन पालन की अपनी विधि में बहुत अधिक कठोर होती है, तो बच्चा अपने मल त्याग रोक सकता है और कब्ज पीड़ित होता है। यदि प्रतिक्रिया का यह तरीका अन्य तरह के व्यवहार के प्रति सामन्यीकरण करता है तो यह अपने चरित्र से दुराग्रही एवं जिद्दी हो जाता है। बावजूद इसके यदि बच्चा उचित समय के अतिरिक्त मलमूत्र त्याग करता है तो निष्कासी विशेषक जैसे क्रूरता, विघटनात्मकता, चिड़चिड़ापन, विसंगतियाँ आदि विकसित हो जाती है। इस प्रकार गुदावस्था के दौरान बड़ी संख्या में व्यवहार के विशेषकों की आधारभूत नींव पड़ जाती है।

स्वच्छता प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण क्रिया है जैसा कि व्यक्ति में मूल्यों एवं विशेषकों के विकास की ओर अग्रसर करता है। सामाजिक नियंत्राण के प्रति मल विसर्जन के परिणामस्वरूप बच्चा कामुक तुष्टि पाना सीखता है। गुदा निष्कासी अवधि को सामान्य निरन्तरता में मल, मल सम्बन्धी आदतें तथा प्रतिदिन की मल की गतिशीलता में रूचि भी सम्मिलित होती है। कुछ लोग मल से इतना सम्बद्ध होते है कि उनकी यह रूचि उनके व्यक्तित्व का केन्द्र बन जाती है। गुदा संघर्ष के स्थिरांक की उत्पत्ति करती है जिसे गुदा चरित्र कहा जाता है। गुदा चरित्र विशेषकों द्वारा विभाजित किया जाता है जैसे विस्तार के प्रति अत्यधिक निष्ठा तथा चरित्र की नकारात्मकता जिससे शीघ्र उत्पन्न होती है।

शैशनावस्था के दौरान व्यक्तित्व विशेषगुणों का विकास

शैशनावस्था के दौरान बच्चे का व्यवहार इडिपस मनोग्रन्थि के क्रियान्वयन द्वारा इंगित होता है। यद्यपि पाँच वर्ष की अवस्था के बाद इसका परिमार्जन हो जाता है जो सम्पूर्ण जीवन में व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित रहता है। विरोधी लिंग तथा सम्प्रभु लोगों के प्रति मनोवृत्ति इडिपस मनोग्रन्थि द्वारा बड़े पैमाने पर प्रतिबन्धित होती है। इडिपस मनोग्रन्थि का प्रतिदमन के कारण पराहम् अन्तिम रूप में विकसित होता है। फ्रायड के अनुसार इडिपस एवं इलेक्ट्रा मनोन्थियों के प्रस्तावों में विभिन्नताएँ आगामी जीवन में पुरूष एवं महिला व्यक्तियों में भिन्नता का आधार होता है। फ्रायड के विचार से महिलाएँ लिंग असूया तथा सम्बन्धित मनोगत्त्यात्मकताओं के कारण मूलरूप में क्षीण, आश्रित एवं हीन होती हैं। इस विचारधारा की विश्वव्यापी रूप से आलोचना की गई तथा इस आलोचना का नेतृत्व करने होनी, दूसरे प्रभावशाली मनोविश्लेषक द्वारा किया गया।

सभी मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाओं में शैशनावस्था सर्वाधिक घटनापूर्ण होती है। इस अवस्था में विकास व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है। इडिपस अवस्था में प्रौढ़ कामुकता की ओर प्रगति करना सामान्य विकास की अपेक्षा होती है। इडिपस मनोग्रन्थियों का समाधान करने में असफल होना प्रौढ़ मनस्ताप का केन्द्र बिन्दु होता है। फ्रायड के अनुसार मनस्ताप इडिपस प्रवत्ति के प्रति अचेतन अव्यवस्था द्वारा परिलक्षित होती है।

किस प्रकार बच्चा इडिपस स्थिति से चरित्र एवं व्यक्तित्व के विकास पर गम्भीर प्रभाव डालता है।

काम प्रसुति एवं प्रजनन अवस्थाओं के दौरान विकसित व्यक्तित्व

फ्रायड के विचारों में शैशवाकालीन कामुकता तथा व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास पर इसके प्रभावों का वर्चस्व था। परिणामस्वरूप फ्रायड ने इस बात का अधिक उल्लेख नहीं किया है कि इन दो अवस्थाओं के दौरान विकास का क्रम किस प्रकार व्यक्तित्व से सम्बन्धित होता है। मनोविश्लेषण द्वारा विकास की प्रथम तीन अवस्थाओं की तुलना में इन दो अवस्थाओं पर अधिक बल नहीं दिया है।

काम प्रसुप्ति काल में विकास बच्चे को सक्षमता एवं उद्योग की चेतना प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। सक्षमता की भावनाएँ तथा उद्योग के गुण का विकास उन लाभों का परिणाम होता है जो बच्चा अपने अन्तःप्रेरण को विभिन्न अलैंगिक क्रियाओं द्वारा पैदा करता है। जैसे– मनोरंजनात्मक, शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्र। बच्चे की सक्रिय रूचि का इन क्रियाकलापों की दिशा में गतिशील होने से बच्चा अपने को उत्तम बनाने, सिद्ध करने तथा रचनात्मक बनने का अवसर प्राप्त करता है।

प्रजजनावस्था, जो किशोरवस्था को प्रारम्भ के साथ सामान्यतः प्रारम्भ हो जाती है, सामूहिक क्रियाकलापों, व्यावसायिक योजना तथा पारिवारिक जीवन के दायित्व लेने की तैयारी की अवस्था होती है। किशोरवस्था के समाप्ति के साथ यह समाजीकत, परहित की भावनाएँ भली–भांति स्थापित हो जाती है। व्यक्ति, आनन्द चाहने वाले, आत्मरति शिशु से वास्तविकता अनुस्थापित समाजीकृत प्रौढ़ के रूप में रूपान्तरित हो जाता है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) गुदा चरित्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुखकामावस्था के दौरान बच्चे द्वारा विकसित किये गये व्यक्तित्व विशेषक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 सारांश

सिगमण्ड फ्रायड द्वारा प्रस्तावित मनोलैंगिक विकास का सिद्धांत, व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों में सर्वाधिक मान्य है। यह सिद्धांत व्यक्ति के मनोवैज्ञा विकास पाँच भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में अवलोकन करता है। इस इकाई में हमने विभिन्न मनोलैंगिक अवस्थाओं के विकास तथा ये अवस्थएँ किस प्रकार व्यक्तित्व के विकास क्रम को प्रभावित करता है, को समझने का प्रयास किया है। हमने लैंगिकता की अवधारणा एवं स्थिरण को भी सीखा है।

जैसा कि इस इकाई हमने सीखा है कि एक व्यक्ति अपने जीवनकाल के दौरान गतिशील वैभिन्य अवस्थाओं से गुजरता है जो व्यक्तित्व की रचना में निर्णायक भूमिका निभाता है। इन अवस्थाओं को मुखा, गुद, शैशन, कामप्रसुप्ति एवं प्रजनन अवस्थाएँ कहते हैं। इन प्रत्येक अवस्थाओं में व्यक्ति विभिन्न प्रचार की कामुक क्रियाकलापों में व्यस्त रहता है जो प्रवत्तियों को उत्प्रेरित एवं संतुष्ट करता है। हमने विकास की प्रत्येक अवस्था में कामोत्तेजक क्षेत्रों तथा विभिन्न अवस्थाओं में बच्चे की कामुक क्रियाओं की प्रकृति में व्यस्तता को विस्तारपूर्वक देखा है।

व्यक्तित्व के विकास के लिए इन अवस्थाओं के महत्व पर विचार विमर्श के दौरान यह संज्ञान में आया कि व्यक्ति की यौन ऊर्जा निरन्तरता, स्थानापन्न, उतात्तीकरण तथा प्रतिक्रिया निर्माण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यवहार में सन्निहित हो जाती है। हमने यह भी देखा है कि मनोलैंगिक जननांकि की प्रक्रिया एक हैं जिसमें द्वन्द्वात्मक वृद्धि सम्मिलित होती है।

इसके द्वारा विभिन्न मनोलैंगिक विकासात्मक अवस्थाओं के दौरान व्यक्ति के अनुभवों के आधार पर व्यवहार के सामान्य या असामान्य प्रतिमान का विकास हो सकता है। जैसा कि उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट किया गया है कि असामान्य व्यवहार के विकास, विशिष्ट विकासात्मक अवस्था के दौरान घटित घटनाओं की प्रकृति द्वारा संरचित होता है।

5.7 शब्दावली

लिबडो : यह एक ऐसी शक्ति की ओर इंगित करता है जिसके द्वारा लैंगिक प्रवृत्ति मन में प्रतिनिधत्व करती है। दूसरे शब्दों में यह लैंगिक प्रवृत्ति का मानसिक अभिव्यक्ति है।

स्थिरण : पूर्व जननांकि विकास के एक विशिष्ट स्तर के प्यार की वस्तु के प्रति लिंग प्रवृत्ति को स्थाई सम्बद्धता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। स्थिरण में बच्चा अगली विकास की अवस्था के प्रति प्राकृतिक आदान–प्रदान नहीं करता क्योंकि वह प्यार की वस्तु के साथ सांवेगिक सम्बद्धता जारी रहती है। उदाहरणार्थ मद्यपान एक मौखिक स्थिरण है।

व्यक्तित्व : यह व्यक्ति की विशिष्ट चारित्रिक गुणों को संदर्भित करता है। यह उन समस्त मनोवैज्ञानिक गुणों को सन्दर्भित करता है जो उसे अद्वितीय व्यक्ति बनाते हैं जैसे सांवेगिक, मानसिक एवं व्यावहारिक।

मनोगत्यात्मकता : यह एक छतरी पदावली है जो किसी सिद्धान्त को उद्धत करता है जो मानव व्यक्तित्व के निर्धारण में अचेतन एवं अन्य प्रभावी कारकों की भूमिका को महत्व देता है।

मनोविश्लेषण : यह अचेतन प्रक्रियाओं की खोज करने के लिए फ्रायड की पद्धति को संदर्भित करता है। मनोविश्लेषण में मन की विषय वस्तु को विभिन्न भागों में विभक्त किया जाता है। जैसे चेतन, अर्द्धचेतन, एवं अचेतन। यह विचारधारा एक मनोवैज्ञानिक विचारधारा के प्रभावशाली विद्यालय के रूप में विकसित हुई है।

मनस्ताप : मनस्ताप मानसिक विकारों के एक समूह को सदर्भित करता है जिसके आधारभूत चारित्रिक गुण आन्तरिक मनोवैज्ञानिक दबाव के रूप में माना जाता है, जो व्यक्ति को उसमें अपने सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रकार्य के लिए अक्षम बना देता है।

अवदमन : यह एक रक्षायुक्ति है जिसमें अस्वीकृत आवेग तथा इच्छाएँ अचेतन में ढकेल कर चौतन्य जागरूकता को दूर कर देता है।

स्थानापन्न : यह एक दुष्चिन्ता कम करने की पद्धति है जिसमें कतिपय व्यक्ति या वस्तु के सम्बद्ध सांवेगिक सम्बद्धता दूसरे व्यक्ति या वस्तु के प्रति स्थानान्तरित हो जाती है।

प्रतिक्रिया निर्धारण : अनैच्छिक अन्तःप्रेरण को नियन्त्रित करने के लिए अहम् द्वारा उपयोग किया जाने वाला यह एक रक्षायुक्त है ऐसा तब होता है जब ये अन्तःप्रेरणों की उपस्थिति विरोधी विशेषज्ञों द्वारा अस्वीकार की जाती है।

उदात्तीकरण : उदात्तीकरण में वे आवेग सम्मिलित किए जाते हैं जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य नहीं होती उनका प्रत्यक्ष व्यक्तिकरण नहीं होता। ऐसे आवेगों को व्यवहार के सामाजिक रूप से स्वीकार्य स्वरूप में परिवर्तित कर दिया जाता है।

प्रत्यावर्तन : यह एक रक्षायुक्त है जिसमें जब अहम् संघर्ष से सामना करता है प्रगतिपूर्ण सांवेगिक स्तर पर त्याग इस प्रकार करता है कि यह एक पूर्व अथवा अधिक शैशवाकालीन स्तर प्राप्त करता है तथा वापस जाता है।

जीवन प्रवृत्ति : जीवन प्रवृत्तियों वे हैं जो व्यक्ति के जीवन रहने के उद्देश्य की पूर्ति करता हो इसके अन्तर्गत यौन, भूख, प्यास आदि सम्मिलित होती हैं।

कामोत्तेजक क्षेत्र : कामोत्तेजक क्षेत्र त्वचा या श्लेष्मा कला का अंग होता है जो क्षोभ के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होता है तथा जिसे जब विशिष्ट रूप में परिमार्जित किया जाता है तो क्षोभ को समाप्त करता है तथा आनन्दायक भावनाएँ उत्पन्न करता है। मुँह कामोत्तेजक क्षेत्र का उदाहरण है।

श्लेष्मा–काल : शरीर के कामोत्तेजक क्षेत्र से सम्बद्ध, आर्द्र, कोमल त्वचा स्वरूप जो कामोत्तेजक क्षेत्र को ढकता है।

इदम् : फ्रायड के अनुसार अहम–मनोबल का वह भाग है जो सामाजिक वास्तविकता के साथ व्यक्ति के स्थाई अन्तःप्रेरणों के अधि कतम संतुष्टि के लिए व्यवहार को निर्देशित करता है। यह वास्तविकता के सिद्धान्त का अनुपालन करता है। संघर्ष की स्थिति में अहम्, इदम और अत्यहम् के बीच मध्यस्थता करता है। अहम् को अधिशासी कहा जाता है क्योंकि यह क्रिया के मार्ग को नियंत्रित करता है और निर्णय करता है कि कौन सी प्रवृत्ति किस प्रकार संतुष्ट की जायेगीं

अत्यहम् : मुख्य शक्ति होता है। यह समाज के मूल्यों एवं आदर्शों का आन्तरिक प्रतिनिधि होता है। यह व्यक्तित्व की नैतिक भुजा होती है इसलिए इसे नैतिक सिद्धान्त भी कहा जाता है।

गुदा चरित्र : गुदा चरित्र व्यक्तित्व विशेषकों का झुण्ड होता है जैसे विस्तार के प्रति अत्यधिक विश्वास करता है तथा चरित्र की वैभिन्नता होती है जिससे गुदावस्था के दौरान सरल आक्रोश प्रस्फुटित हो जाता है परिणामस्वरूप वे गुदा के संघर्षों को प्रस्ताओं की असफलता के परिणामस्वरूप सामने आता है।

स्वरूप कामुकता : यह एक व्यक्ति के अपने आप से प्यार की विकृति का प्रदर्शन है। यह पद "स्वरूप कामुकता" यूनानी किम्वदन्तियों, के आधार पर उद्धत किया गया है। स्वरूप कामुक उसे कहा जाता है जो अपनी स्वयं की प्रतिछाया से प्यार होता है।

इडिपस–मनोग्रन्थि : इडिपस मनोग्रन्थि के अन्तर्गत एक लड़के का अपनी माता के लिए काम सम्बद्धता होती है तथा पिता के प्रति शत्रुता की भावना होती है। थोबिस के राजा के नाम पर इडिपस मनोग्रन्थि नाम रखा गया जिसने अपने पिता की हत्या करके अपनी माता से विवाह किया था। यह शैशनावस्था के दौरान एक सामान्य घटना होती है।

एलेक्ट्रा मनोग्रन्थि : एलेक्ट्रा मनोग्रन्थि के अन्तर्गत लड़की की पिता के प्रति यौन सम्बद्धता होती है तथा माता के लिए शत्रुता की भावना होती हैं यह शैशनावस्था के दौरान एक सामान्य घटना होती है।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कालविन एस. हाल एण्ड गार्डनर लिण्डजे, (1985), *थ्योरीज ऑफ पर्सनाल्टी*, जोहन वाइली ईस्टर्न लिमिटेड और संस इनक, न्यूयार्क

हजेले लारी और जीगलर डेनीअल जे, (1981), *पर्सनेती थ्रोशीय* मैक ग्राव हिल बुक कम्पनी, नई दिल्ली

हरलॉक, एलीजाबेथ बी, (1984), चाइल्ड डेवलपमेंट, छटवां संसकरण टाटा मैकगा हिल, न्यूयार्क

हरलॉक, एलीजाबेथ बी, (1984), डेवलपमेंट साइकोलाजी, पाँचवां संस्था ।

परवीन लारेस ए, (1984), पर्सनेल्टी थियोरी एंड रिसर्च, जाहन विले एंड संस. इन्यान्यूयार्क

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) फ्रायड ने लैंगिकता पद को व्यक्ति के कामुक जीवन के संदर्भ में उपयोग किया है।उनके अनुसार लैंगिकता केवल प्रौढ़ में नहीं होती वरन शैश्वकाल में भी होती है। यह समस्त कामविपर्यास तथा उन समस्त क्रियाओं एवं संवेदनाओं को सन्निहित करता है जो आनन्दायक तथा विषयासक्त तुष्टि करने में सक्षम होता है। फ्रायड ने देखा कि शिशु जन्म से ही कामुक क्रियाएं करने के योग्य होते हैं। शैशवकालीन लैंगिकता का प्रारम्भिक प्रदर्शन दैहिक प्रकार्यों के सम्बन्ध में उत्पन्न होता है जैसे दूध पीना, मल विसर्जन, मूत्र नियंत्रण।

2) कामोत्तेजक क्षेत्र त्वचा या श्लेष्मा–काल का भाग होता है जो क्षोभ के प्रति अत्यन्तसंवेदनशील होता है तथा उसे जब विभिन्न प्रणालियों के परिमार्जित किया जाता है तो क्षोभ को समाप्त करता है तथा आनन्दायक भावनाएँ उत्पन्न करता है। होठ व मुँह एक कामोत्तेजक क्षेत्र बनाते हैं, गुदा परिक्षेत्र दूसरा तथा यौन अंग तीसरा क्षेत्र। फ्रायड के अनुसार यौन प्रवृत्ति अनेक शारीरिक आवश्यकताओं के आस पास केन्द्रित होती है जो कामुक इच्छाओं को उत्पन्न करती है। इसमें से प्रत्येक इच्छाएँ विभिन्न शारीरिक क्षेत्रों से जन्म लेती हैं जिसे कामोत्तेजक क्षेत्र के रूप में संदर्भित किया जाता है।

बोध प्रश्न II

1) मनोलैंगिक अवस्थाएँ मुख, गुदा, शैश्ना, कामप्रसुप्ति तथा प्रजनन अवस्थाएँ कही जाती हैं। क्रमशः इन अवस्थाओं को तिथिवार आयु क्षेत्र निम्न प्रकार है :

मुखकामावस्था	:	जन्म से 18 मास
गुदाकामावस्था	:	18 मासों से 3 वर्ष की आयु तक
शैशनावस्था	:	3 वर्ष से 5 वर्ष तक
कम प्रसुप्ति	:	11 या 12 वर्ष से आगे

2) इडिपस मनोग्रन्थि के अन्तर्गत एक लड़के का माँ के प्रति कामुक सम्बद्धता तथा पिता के प्रति शत्रुता की भावना होती है। इडिपस मनोग्रन्थि में लड़के में माता के प्रति अगम्यगमनात्मक चाहत होती है तथा पिता के प्रति प्रतिरोध की धारणा पाई जाती है। इलेक्ट्रा मनोग्रन्थि के अन्तर्गत एक लड़की का पिता के प्रति कामक सम्बद्धता होती है तथा माता के प्रति शत्रुता की भावना होती है। इडिपस मनोगत बन्ध्याकरण दुष्चिन्ता द्वारा हो सकती है। बन्ध्यकरण दुष्चिन्ता माता के लिए यौन इच्छा का अवदमन तथा पिता के लिए शत्रुता की भावना उत्पन्न करती है। एक लड़की वास्तविक प्रतिबन्धों के कारण अगम्यगमनात्मक सम्बद्धता को समाप्त करके पिता से अपनी यौन इच्छा की तुष्टि करती है।

3) स्थिरीकरण, विकास की विशिष्ट अवस्था में प्यार के पात्र के प्रति लैंगिक प्रवृत्तियोंकी स्थाई सम्बद्धता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। स्थिरीकरण में बच्चा, प्यार के पात्र के साथ स्थाई सांवेगिक सम्बद्धता के कारण विकास की अगली अवस्था में प्राकृतिक रूप से स्थानान्तरण नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ मद्यपान एक मौखिक स्थिरीकरण है।

बोध प्रश्न III

1) गुदा चरित्र व्यक्तित्व विशेषकों का एक झुण्ड होता है जैसे विस्तार के प्रति अत्यन्तभक्ति तथा असमान चरित्र जिसके परिणामस्वरूप सरलतापूर्वक आक्रोश विकसित होता है, मुख कामावस्था की विशेषता है। जिसका परिणाम गुदा संघर्षों को समाप्त करने में असफलता होती है।

2) मुखकामावस्था के दौरान एक बच्चे द्वारा जो सकारात्मक व्यक्तित्व के विशेषक प्राप्त किये जाते है वे आशावादिता, विश्वसनीयता तथा विश्वास में सम्मिलित होने की क्षमता, दूसरों से उत्तम सम्बन्ध स्थापित करते हैं। माता द्वारा आवश्यकताओं का निरस्तीकरण करने की स्थिति में घटना नकारात्मक विशेषक को जन्म दे सकती है जैसे– निराशावादिता, अविश्वास तथा दूसरों के प्रति घृणा। इनके आधिक्य केसाल में यह निराशावादिता, सामान्य सीमा से बाहर चली जाती है तथा विश्वास बात करती है जिससे मनोवैज्ञानिक अवसाद का एक स्वरूप उत्पन्न हो जाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY